❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

श्रीमानस समाधान रत्नावली

लेखक मानस तत्वान्वेषीः—

पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी

श्रीरामग्रंथागार मणिपर्वत, श्रीअयोध्याजी



प्रकाशक तथा प्राप्तिस्थानः—

मौनी श्रीरघुनाथदासजी मानसकोविद

अध्यक्ष-श्रीतुलसी साहित्य प्रचारक समिति

मो० पो० शृङ्गवेरपुर, जि० इलाहाबाद (उ० प्र०)

यह पुस्तक मिलने का दूसरा पताः—

पं० श्रीमानसप्रपन्न त्रिपाठी रामायणी व्यास

ग्राम सेमरखेड़ी, पो० आगासोद, जि० सागर (म० प्र०)

❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

श्रीमानस समाधान रत्नावली

(प्रथम खण्ड)

लेखकः—

ानसतत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी

श्रीरामग्रन्थागार मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी

ये दोषाः समुदीरिता बुधगणै रामेऽथ रामायणे
निर्जीवा किल साधुतर्करहिताः या याश्च दुर्युक्तयः।
ग्रन्थेऽत्रविवेचनैश्च विविधैः सच्छास्त्रतः खण्डिता
सत्यासत्यविवेकपूर्णकुशलास्ते शीलयन्तु स्वयम्॥

(पं० श्रीबज्रांगदासजी, रामायण संदर्भः)

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान—

मौनी श्रीरघुनाथदासजी मानस कोविद

श्रीतुलसी साहित्य प्रचारक समिति

मु० पो० श्रृङ्गबेरपुर, जि० इलाहाबाद (उ० प्र०)

मिलने का दूसरा पता—

पं० श्रीमानस प्रपन्न त्रिपाठी रामायणी

ग्राम सेमर खेड़ी, मानसभवन

पो० आगासोद, जि० सागर (म० प्र०)

ार्तिक पूर्णिमा सं० २०१६ वि० मूल्य ४) डाकखर्च अलग

ुद्रकः—सरयूप्रसाद श्रीवास्तव श्रीहनुमत् प्रेस, श्रीअयोध्याजी

-: प्रकाशकीय वक्तव्य :-

दो बर्षपूर्व हमने इस समाधान रत्नावलीके प्रकाशनका बिचारकिया और अग्रिमग्राहक बनने वालोंको आधे दामपर देनेकी नोटिस और रसीदबुकभी छपाई। पर अँगुलियोंपर गिननेभरकोही ग्राहकबनें, जोबनें उनका बारबार तकाजा आया करताहै। इससे द्रब्याभावमें पूराग्रंथ न निकलकर खण्डखण्ड करके निकलरहाहै, दोबर्ष पूर्वसे अब कागजादि महँगा होजाने परभी जो ग्राहकबने चुकेहैं उन्हेंतो अपनी शर्तके अनुसार ५०० पृष्ठ तक आधे दामपर तो हम देनेको बाध्यहैं देंगेही, पर धीरे-धीरे। यदि शीघ्रही (स्थाई) ग्राहक अधिकसंख्यामें होगयेतो हम आगेके खण्डभी शीघ्रही निकालेंगे। हमने इतनींघनी छपाई इसलिये कराईहै कि कमपृष्ठोंमें प्रेमियोंको अधिक और ठोस सामग्री प्राप्तहो। यदि हम व्यापारी ढंगसे छापतेतो यही मेटर चारसौ पृष्ठों तक में छप पाता। आशा है मानसप्रेमीगण हमें इतना सहयोग प्रदानकरेंगे कि हम बहुत जल्द दूसरा खण्ड छापनेको बाध्यहो जाँय। अभीतो हम समस्त बालकांडका समाधानभी नहीं दे रहे हैं।

सभी मानसप्रेमियों का अपनाही—

रघुनाथदास मौनी

* भूमिका *

(ले० पं० श्रीजानकीनाथशर्मा सम्पादन बिभाग कल्याण)

पं० श्रीरामकुमारदासजीकी पुस्तकें बड़े महत्वकी होतीहैं। उनकी सूझबूझ शास्त्रीयपरिश्रमको देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ताहै। आपकी पुस्तक समाधानरत्नावली प्रकाशितहो रहीहै। यह अत्यन्त रोचकपुस्तक उनके दीर्घकालिक स्वाध्याय भजन तथा तपस्याका फलहै।

मानसकी शंकाओंपर बहुतोंके समाधान आदि प्रकाशित होते रहेहैं। पर यह ध्यानदेनेकी बातहै कि अधिकांशने अपने बुद्धिचातुर्य से ही समाधान कियेहैं। कुछ लोगोंने मानसकी ही पंक्तियों द्वारा समाधान करनेका प्रयत्न कियाहै। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि गोस्वामीजीका अध्ययन विशालथा। उन्होंने 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' यहग्रन्थ लिखाथा। उनकी बहुतसी पंक्तियोंकी संगति केवल मानस से ही नहीं लगसकती। उनकीकुछ बातें ऐसीहैं जिनके लिये झंख मारकर ग्रन्थान्तरों की शरणलेनीही पड़तीहै जैसे 'गौतमनारीशापबस उपलदेह धरिधीर' गाधि तनय सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ अगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षण्मुख जन्म सकल जगजाना॥ भइजग विदित दक्षगति सोई। 'यह इतिहास सकल जगजाना॥'

आदिमें कवि स्वयं इसबातको स्वीकार करतेहैं कि इनके जाननेके लिये अन्य ग्रन्थ देखने चाहिये। यहबात मानसहीक्या बाल्मीकि रामायणके बिषयमें भी है। बालकांड सर्ग ६४ का यह श्लोक ध्यान देने योग्यहै—

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयेषिणम्।
दशवर्ष सहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे॥१०॥
ब्राह्मणः सुमहसेजास्तपोबलसमन्वितः।
उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मतक्रोधकलुषीकृताम्॥११॥

ग्रन्थान्तर न देखनेवाले तथा परम्पराका अन्धानुसरण करनेवाले प्रायः सभी टीकाकारोंने इस उद्धारक ब्राह्मणका नाम

वशिष्ठ बतलायाहै किन्तु वास्तवमें यह कथा स्कंदपुराणके ब्रह्मखण्डमें है। वहां रामसेतुकुण्डमें गिरने तथा रामरजसेपूत होने के कारण अहल्याहीकी भांति इसका तथा उर्वशीका उद्धारहोना बतायाहै। इसमें हेतुमात्र एक ब्राह्मण होताहै जो एक राक्षसीके बधकेलिये अपने धनुषपर उस शिलाकाही संधान करताहै जो वास्तवमें रम्भाथी।

पं० श्रीरामकुमारदासजीका शास्त्रीय अध्ययन अत्यंत-गहनहै। उनके जीवनका यहीएक प्रधानविषय रहाहै। 'रुचिर्व्यसनं श्रुतजं प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्' को आपने कर दिखायाहै। आपने समाधानमें तर्क, युक्तियां, मानस, गोस्वामीजी महाराजके अन्यग्रन्थोंके साथही समस्त वेदपुराणागमों काभी भाव उँड़ेलदियाहै। आपके समाधान सर्वोत्तम हुयेहैं, यह कोई भी पाठक स्वीकार करेगा। आपकी प्रत्येक रचनामें श्रम एवं सूक्ष्म अनुसंधान पूर्वक तत्वोद्घाटन रहताहै जिससे निरतिशय आनन्द आताहै। बड़ी प्रसन्नताकी बातहै कि इधरआप मानस का भागवतादि श्लोकोंके साथ तुलनात्मक चौपाइयां लिखरहेहैं। अबतक कई नाटकों, भगवद्गीता तथा भागवत परका कार्यहो चुकाहै। यद्यपि इस दिशामें काशीकी एकसंस्था पर्याप्तधन लगा कर कार्यकर रहीहै। पर उसकाकार्य सर्वथा नगण्यहै। ऐसाकार्य धन या धनियोंके वशका नहींहै। यहतो कोई भगवत्कृपापात्र सच्चाप्रेमी भक्तहीकर सकताथा। यदि आपकी वह पुस्तकेंभी प्रकाशितहो सकींतो विद्या तथा अनुसंधान क्षेत्रमें एक अद्भुतदेनहोगी।

वस्तुतः आज के जगत में ग्रन्थ तो बहुत ही प्रकाशित हो रहे हैं, बिना समझे बूझे लिखने वाले लेखकों काभी अभावनहींहै। किन्तुऐसा साहित्य वरदाननहीं, अभिशाप ही सिद्धहोताहै।' पण्डितजीकी पुस्तक ऐसे लेखकों तथा सामान्य जनता सबकेलिये सब प्रकारसे शिक्षाप्रद तथा कल्याणकारीभी सिद्धहोगी, ऐसी आशाहै। पण्डितजी तप भजन तथा स्वाध्याय के मूर्तिमानरूपहै। हमारे सौभाग्यसे उनकी जितनीही कृतियां सामने आयेंगी, हमारा परम उपकारही होगा।

❋ लेखक की ओर से ❋

श्रीमत्तुलसिदासस्य भारतीभोगिदंशिता ।
मम रत्नावली हीयं तामद्योज्जीवयिष्यति ।।
(काहं मन्दमतिः केदं मन्थनं क्षीरबारिधेः ।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मंदरः ।। कस्यचित्)

बिबिधिबिचार सयुक्ति तर्क शंका समधानी ।
ऋषि मुनि वेद पुराण शास्त्र सम्मत सुप्रमानी ।।
श्रुति गुरु शास्त्र उच्छिष्ट रखी नहि कछु मनमानी ।
मानस का शुचि भाव कहा समझै अज्ञानी ।।

अपनेढंगसे शंकासमाधान करनेका सूत्रपात मैंने मानस-पीयूष प्रथमसंस्करणमें श्रीगुरुपदरजःबन्दन को लेकर किया था मानसमणिमें आरम्भसेही उसके प्रबंधक, प्रकाशक बाबू शारदा-प्रसादजीके सुझावपर 'शंका समाधान' स्तम्भरखागया । प्रेमियों की शंकायें आतीं और मैं समाधान करता । फिरतो अन्यपत्रोंने भी इसे अपनाया । इसमें मैं शंकाकारों एवं बाबू शारदाप्रसाद जी मंत्री मानससंघका बहुत-बहुतही कृतज्ञहूँ । यदिशंकाकारसज्जन-गण नई-नई शंकायें न करते तो मैं ऐसी-ऐसी शंकायें नहींही उठा सकताथा और मंत्रीजी मुझ से समाधान न कराते तो मैं न तो मानसमें इतना गोताही लगासकता और न समाधानकी पुष्टिके लिये सद्ग्रन्थोंका इतना गहन अनुशीलनही करसकता ।

मानसमणि एवं पत्रपत्रिकाओंमें दोसौसे ऊपर शंकाओंपर मेरे समाधान निकल चुकेहैं । इधर दूसरे शंकाकार लोग प्रायः पूर्वप्रकाशित शंकायेंही प्रेषित करनेलगे, परमुझे पिष्टपेषण अभीष्ट नहीं रहता और सभी पत्रपत्रिकायें सब देख नहीं पातेहैं और उनके अङ्कभी स्थाई नहीं रहते । इससे श्रीतुलसीसाहित्यप्रचारक समिति उन शंकासमाधानोंको ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करना चाहती है । ग्रन्थमें प्रायः सभी समाधान पारिवर्द्धितहैं । मैं सभी शंका-कार सज्जनोंका पतादेना चाहताथा परन्तु अपनी अज्ञानतासे विवश हूँ । सुनाहै यूरोपमें पत्रपत्रिकाओंके स्वामी भरिपूरपारि-

श्रमिक देकरही किसी तरहकाभी लेख लेतेहैं। इसीसे लेखकेसाथ में लेखकका नामतो देतेहैं, परन्तु साथमें लेखकका पता नहीं छापते। लेखकसे कोई परिचय करना चाहे तो पत्रस्वामी माध्यमसे करसकताहै। भारतमें अंग्रेजोंके बेटे-पोते-शिष्यादि जो हिन्दी पत्रपत्रिकाओंके संपादक-प्रकाशक आदिहोतेहैं वे लेखक के नामकेसाथ चाहेतीन हाथकी लम्बी पूँछ (उपाधि, डिग्री) हो उसेतो तीन पंक्तिमें लेखके साथमें छापेंगे पर तीन अंगुलका ग्राम पो० जिला तीन शब्दोंमें लेखके साथनहीं छापेंगे। इसीसे अपने कृपालु शंकाकार सज्जनोंमें सबका पता मैं नहीं दे सका और जिनकापता किसीतरह ज्ञातहोसका उनकापता उनकी किसी शंकाके साथमें दे दियाहै।

पं० श्रीजानकीनाथ शर्माजीने अपनी सौजन्यतासे भूमिका लिखदीहै, पर उन्हें कुछ कहनाहो स्वयं अपने आपकोही कहना है वे इतने अपनेहैं। किसीभी समाधानपर मेरा कभीभी 'इद-मित्थम्' का दुराग्रह नहींरहा करता, परन्तु पूर्वाचार्य सिद्धान्त-विरोधरहित सच्छास्त्र एवं सत्तर्कका अनुगमनतो हृदय और मस्तिष्क करताहीहै। सच्छास्त्रानुसार सुझानेपर मैं अपनी भूलों त्रुटियों (गलतियों) को माननेकेलिये सदैव तैयार रहता हूँ।

मेरेपास यदाकदा मौखिक सूचना आया करतीहैं कि 'अमुक अमुक रामायणबन्धु कहतेहै कि पं० रामकुमारदासजी तो वेद पुराणोंके पण्डितहैं, उन्होंने किसी परम्पराके रामायणीसे रामायण लगायाही नहींहै।' इत्यादि मैं इसे सर्वथा स्वीकार करता हूँ कि सौभाग्यवश मैंने परम्पराके किसी रामायणीसे श्रीतुलसी-साहित्य नहीं लगायाहै अर्थात् मैं घोखू (रट्टू) रामायणीनहींहूँ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने दीक्षागुरू से श्रीरामचरित्र पढ़सुनकर नानापुराण निगमागमका मथनकरके तब श्रीरामचरित मानसका प्रणयन कियाहै। श्रीगोस्वामीजी सरीखे नाना पुराण निगमागमके मथन करनेकी किंचित् भी

क्षमता मुझमें नहींहै। अपने सद्गुरुकी दीहुई कुंजी से प्राप्य पुराणनिगमागम द्वारा श्रीतुलसी-साहित्यके समझने, लगानेकी चेष्टा जागरूकतासे करतारहताहूँ। इसेमैं पुनः स्वीकार करताहूँ कि मेरे इस ढंगसे श्रीतुलसीके अनुशीलनका अधिक श्रेय शंका-कार सज्जनोंकाहीहै। प्रेसकी प्रेतलीलामें पड़कर अनेकों शब्द अशुद्ध छपगयेहैं जिनमें कुछ अशुद्धियां विशेष खटकने वालीहैं जैसे, पृष्ठ २० पंक्ति २ नितरामका 'मितराम्' पृष्ठ २३ पंक्ति १६ देकर का देखकर, पृष्ठ ५८ पंक्ति २३ विद्या का विद्मा, पृष्ठ ६१ पंक्ति २२ बायें का 'दायें, पृष्ठ १४६ पंक्ति ५ भरदेने का भारदेने, पृष्ठ १६८ पं० २३ श्रीरामबक्षजी का श्रीबक्षजी, आदि छपगया औरभी ऐसी अनेक शब्दाशुद्धियां एवं व, ब, मात्रा, विसर्ग आदि की अशुद्धियां हैं जिसे विज्ञपाठक सुधार लेनेकी कृपा करेंगे।

भगवद्भागवतानुचरः--

पं. रामकुमारदासः

कार्तिकपूर्णिमा सं० २०१६ वि०

पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणायं मया कृतः।
बालानां सुखबोधाय न तु पाण्डित्यगर्वत.॥

अत्रप्रमाणं यत्किंचित्प्रमादाल्लिखितं मया।
विद्वद्भिः सुविचार्यैव शोधनीयोऽनुसूयभिः॥

समाधानं मयामूलैर्बहुग्रन्थैर्यथाकृतः।
तथैवानेकश्रुतिभिरुद्धृतः मानसंग्रहः॥

महाखेदान् मया सर्वं यथा स्थानं नियोजितः।
प्राज्ञं बिना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विमूढ़धीः॥

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमः।
नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वीप्रसववेदनाम्॥

ये शास्त्र संग्रहेमूढ़ा नैव जानन्ति योग्यताम्।
ते कथं हि भविष्यन्ति हर्षिता पठनेऽस्य च॥

समाधानानिमान्मिश्राः पठन्तु न पठन्तु बा।
मया तु स्वीय बोधाय कृतमेतन्न सर्वशः॥

गच्छतःस्खलनं क्वापि भवेदेवप्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनः॥

अयुक्तमस्मिन् यदि किंचिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा।
औदार्यकारुण्यविशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत् परिमार्जनीयम्॥

मुद्राकरकराघात कातरा क्वापिभारती।
करुणार्द्र करस्पर्शैः सुधियः शोधयन्त्विमाम्॥

त्रुटिश्चेदुपलभ्येत मुद्रणे दृष्टिदोषतः।
प्रार्थ्यते ग्रन्थकारेण क्षन्तव्यं सुमनीषिभिः॥

(संकलित)

—::❀::—

शंका (१)

श्री मन्मानस रामायण को श्रीरामतन क्यों कहा बाल-काण्ड प्रभु पाँय, ग्रीवा सुन्दर, लंका मुख, उत्तर मस्तिष्क, क्यों बताया—क्या इसका प्रतिपादन किसी कवित्त मात्र से है, अथवा अन्य गोस्वामी जी के शब्दों से होता है। इन काण्डों को अंग प्रत्यंग बताने में क्या कोई रहस्य है।

(श्रीनिवासदास पोद्दार)

समाधान

सरसनाटककाव्यकलाकुलं सरसरागसुरंजितविग्रहम्।
सरसराघवकेलिसुपण्डितं नमतवानरराजमिहाद्भुतम्॥

कल्याण के तीसरे विशेषांक गीतांक' पृ० ४१६ में दिये हुए इतिहास से मालूम पड़ता है कि गीता का नौवाँ अध्याय भगवान का मस्तक है क्योंकि 'वहाम्यहम्' को काट कर 'ददाम्यहम्' बना देने से भगवान् ने अपने मस्तक पर घाव दिखलाया। गीता की अनेक पुस्तकों में माहात्म्य के आधार पर गीतामूर्ति भगवान् का चित्र छपा रहता है उसमें विभिन्न अंगों की कल्पना विभिन्न अध्यायों से की है। कविवर तत्ववेत्ता जी के—

प्रथम द्वितिय दोउ चरण तृतिय चतुरथ दोऊ उरु।
पञ्चम नाभिगंभीर हृदय षष्टम सब सुख पुरु॥
सप्तमअष्टम भुजा नवम शुभकंठ विराजै।
दशम बदन सुख सदन भाल एकादश राजै॥

द्वादश सिर शोभित सदा मंगल रूपी सुमिर मन।
'ततवेता' तिहु लोक में कीरति रूपी कृष्णतन ॥

इस पद्य में श्रीमद्भागवत को श्रीकृष्ण तन कहा है। अभी कल की बात है कि उर्दू में विस्तृत रूपसे सुदामा चरित्र के लेखक लखनऊ के प्रसिद्ध शायर (कवि) सतगुरुसहाय 'मुल्तजी' ने जब 'गोपाल सहस्र नाम' से 'विश्वम्भर' नाम काट दिया तो भगवान् ने उनकी स्त्री को अपना फटा मस्तक दिखाकर नालिश किया।

इन सब उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवन्नाम एवं यशोऽङ्कित सभी ग्रन्थ भगवद्विग्रह हैं। वशिष्ठ संहिता में वर्णित बताया जाता है कि—

रामस्य नामरूपं च लीलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

भगवन्नाम, भगवद्रूप, भगवल्लीला (लीलाङ्कित ग्रन्थ) और भगवद्धाम चारों भगवान के सच्चिदानन्द दिव्य विग्रह हैं। इसी आधार पर भावुकों ने भगवच्चरित्रात्मक निबन्धों के अमुक अंश को भगवान् के अमुक विग्रह की कल्पना कर लिया है। अन्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में चाहे जो कहा जाय परन्तु श्रीरामायण को तो 'राम + अयन' भगवान् श्रीरामजी का घर कहा गया है। घर में रहा जाता है, रामायण में श्री रामजी रहते हैं 'सभी कांड घर हैं अतः सभी काण्डों में श्री रामजी का सम्पूर्ण दिव्य विग्रह रहता है। और श्रीरामायण जी के किस अंश में श्री राम जी का चरण रहता है और

किस अंश में मस्तक यह तो प्रेमियों की भावना पर निर्भर है। भावना के बल परही तत्ववेत्ताजीने 'मानस' को 'रामतन' के रूप में वह छप्पै लिख दिया [वह छप्पै मानसकार श्री गोस्वामी कृत नहीं है ऐसा सभी मानस-मर्मज्ञ एक स्वर से मानते हैं]। वह छप्पै यह है—

बालकाण्ड प्रभु पाँय अयोध्या कटिमन मोहै।
उदर वन्यो आरण्य हृदै किष्किधा सोहै॥
सुन्दर ग्रीव मुखारविन्द लंका कहि गायो।
जहाँ दशानन आदि निशाचर सकल समायो॥
मस्तक उत्तरकाण्ड शुचि यहि विधि तुलसीदासभन।
आदि अन्तलौं देखिये श्रीमन्मानस रामतन॥

मेरी समझ में तो ऐसा आता है कि जैसे जीव सम्पूर्ण शरीर में ज्ञान व्याप्त्या व्याप्त माना जाता है, वैसे समस्त ब्रह्मांड में एक रस भगवद् व्याप्ति है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। 'तिलेषुतैल दध्नीव सर्पिः॥'श्वे.उ

की तरह श्री रामायण जी का एक एक पद्य, एक एक शब्द और एक एक अक्षर तक श्री राम जी का सम्पूर्ण दिव्य विग्रह है जैसा कि वशिष्ठ संहिता के उपर्युक्त श्लोक में भगवल्लीला के समग्र अंश को भगवान् का समग्र सच्चिदानन्द विग्रह कहा गया है। (मानसमणि ८। ३)

—✱—

❋ शंका २ ❋

श्रीरामचरितमानस बन्दना प्रसंग के अवलोकन से ही यह ज्ञान हो जाता है कि गोस्वामी जी ने मानस के सभी पात्रों की बन्दना करते हुये भी उर्मिला माण्डवी और श्रुति-कीर्ति का कहीं संकेत भी नहीं किया है। जहाँ रीछ बन्दर तक की बन्दना की गई, वहाँ किन्हीं मुख्य पात्रों को ही छोड़ देना उचित नहीं जान पड़ता।

किन्हीं २ महानुभावों का मत है कि "प्रणवों परिजन सहित विदेहू" के अन्तर्गत ही ये लोग आ जाते हैं। लेकिन ऐसा होने पर जानकी जी की अलग से बन्दना करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि परिजन सहित जनकजी की बन्दना में वे भी आ गईं होंगी, लेकिन ऐसा देखने में नहीं आता है। इसलिये इतना कहने से इस शंका का समाधान नहीं होता। (अमरदास पुजारी)

❋ समाधान ❋

नमामि माण्डवीं देवीमूर्मिलां लक्ष्मणप्रियाम्।
शत्रुघ्नपत्नीं श्रुतिकीर्तिं जानकीं रामवल्लभाम्॥

श्री गोस्वामीजी ने वैसे तो समष्टि रूपसे एवं वर्गीकरण करके भी सारे ब्रह्माण्ड मात्र के सभी चराचर मात्र की बन्दना मानस में किया है। परन्तु अलग अलग नाम लेकर तो उन्हीं व्यक्तियों की बन्दना किया है जिन्होंने रामजी के चरित्रों में कुछ भी किसी तरह का भी भाग लिया है। व्यास, शुक, सनकादि, नारदादि किंवा विधि, विनायक, हर गौरी आदि

श्रीरामचरित्र के पात्र ही हैं उनके विना तो राम चरित्र ही अधूरा रह जाता है। और माण्डवी, उर्मिला तथा श्रुतिकीर्ति का किसी प्रकार का भी सहयोग रामचरित्र में नहीं है। केवल रामचरित्र के विशेष विशेष पात्र श्रीभरतादि के साथ विवाह होने के कारण विवाह के समय उनका नाम एक बार मानस में आगया है (यही क्या कम है) गोस्वामीजी की ही लेखनी से लिखा गया है कि—

'पूजनीय प्रिय परम जहांते। मानिय सबहिं रामहिं के नाते॥'

अतः श्रीरामजी की लीला में कुछ भी सहयोग न होने से गोस्वामी जी ने उनका नाम लेकर स्वतंत्र रूप से उनकी वन्दना नहीं किया। इस तथ्य का विचार किये बिना ही पंडितम्मन्य लोग गोस्वामीजी पर तथा अन्य श्रीरामचरित्र के कवियों पर उर्मिलादि की उपेक्षा का दोष लगाया करते हैं।

कुछ लोग यह कहते सुने जाते हैं कि शत्रुघ्न जी की वन्दना उनका नाम लेकर क्यों किया? जबकि उनका मानस भरमें बोलना तक नहीं लिखा है? ठीक है परमसुशील शत्रुघ्न-जी का बोलना रामचरितमानस भरमें नहीं लिखा है। परन्तु—

'जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करन वेध उपवीत विआहा। संग संग सब भयउ उछाहा॥'

के अतिरिक्त रामचरित में रामसेवा में आपका पूर्ण सहयोग रहा है। देखिये जब पता चला कि—

'रामराज्य बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि॥' (दोहावली)

तब—'लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।'

देखते ही उसे दण्ड देना शुरू किया—

'हुमकि लात तकि कूबर मारा।'

चित्रकूट के मार्ग में भरतजी ने—

'भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई।'

स्वयं श्रीरामजी ने ही चित्रकूट में—

'सिय समीप राखे रिपुदमनू॥'

श्रीसीतारामजी के सिंहासनारूढ़ होने पर शत्रुघ्नजी व्यजन लिये सेवा में प्रस्तुत थे। और सतत काल—

'सेवहिं सानुकूल साई।'

अतः शत्रुघ्नजी का सहयोग रामचरित्र में पूर्ण रूपेण है। इसीलिये उनका नाम लेकर स्वतंत्र वंदना की है। हाँ वह सहयोग सर्वत्र मौन रूपसे ही है बोलते हुए नहीं है। इसी से एकही पंक्ति में उनकी वन्दना भी है।

कुछ तार्किक लोग ऐसा भी कुचोद्य करते पाये जाते हैं कि कैकेयी और सुमित्रा का भी तो नाम लेकर वंदना नहीं है। शायद तुलसीदासजी स्त्रियों से कुछ हार्दिक द्वेष रखते थे तभी तो माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति कैकेयी, सुमित्रा आदि की वंदना नहीं किया। ऐसा मानने वालों को भी समझ लेना चाहिये कि जिस तरह–'कपि पति रीछ निशाचर राजा।' पंक्ति में निशाचर राजा से 'कपि पति रीछ' एवं अङ्गदादि के साहचर्य से विभीषण का ही ग्रहण होता है रावण का नहीं। उसी तरह 'दशरथराउ सहित सब रानी' पक्तियों में रानी से कौशल्या कैकेयी और सुमित्रा इन तीनों का ही ग्रहण होता है। क्योंकि आगे सब नारी से तीनों ही को ग्रहण किया गया है कि– 'यहि विधि गर्भ सहित सब नारी।' गर्भ सहित तो ये ही तीन

थीं। यद्यपि कि गोस्वामीजी ने गीतावली में—

'पालागन दुलहिनन सिखावति सरिस सासु सत साता।'

कहकर दशरथजी के सातसौ रानियों का होना स्वीकार किया है। परन्तु मानस में तो सर्वत्र तीन ही माना है। अतः स्वतंत्र निर्देश पूर्वक उनकी वंदना न करने का दोष नहीं लगाया जा सकता। कुछ लोग शायद यह भी कहें कि गोस्वामीजी ने माण्डवी उर्मिला आदि का चरित्र न लिखा न सही। पर उनका सहयोग तो श्रीरामचरित्र के साथ रहा, श्रीमैथिली शरणजी गुप्त आदि के लेखों से स्पष्ट है। परन्तु विचारने की बात है कि यहाँ गुप्तजी के कल्पित रामके सहयोगियों की चर्चा नहीं है। यहाँ तो गोस्वामीजी के अवतार राम के सहयोगियों की चर्चा है। गोस्वामीजी के लक्ष्मण डंका पोट कर कहते हैं कि—

गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं स्वभाव नाथ पतिआहू॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी॥

वक्ताओं ने भी लक्ष्मणजी के हार्दिक वैराग्य और राम प्रेम की प्रसंशा करते हुये स्पष्ट घोषित कर दिया कि—

करत लखन सपनेहु न चित बंधु मातु पितु गेह।

और गुप्तजी के लक्ष्मण तो श्रीसीतारामजी की सेवा के समय पंचवटी में पहरे पर श्रीसीतारामजी का चिन्तवन छोड़कर उर्मिला का चिन्तवन करते हैं सेवा में असावधानी करते हैं अर्थात् प्रहरी होते हुये भी पहरे पर सो से जाते हैं और स्वप्न में राम का नहीं उर्मिला का स्वप्न देखते।

गोस्वामीजी के लक्ष्मण श्रीसीतारामजी को सदैव माता

ही कहते हैं "लछिमन बिहसि कहा सुनु माता।" सीताजी भी लक्ष्मण को वत्स कहती हैं-पुत्रवत देखती हैं। और गुप्तजी के लक्ष्मण और सीता में आजकल के देवर भौजाई की तरह हँसी मजाक़ होता है। गोस्वामीजी का रामचरित मानस श्री शिवजी के मानस का अनुवाद है और गुप्तजी का साकेत पंचवटी आदि कल्पना प्रधान काव्य हैं। अतएव गुप्तजी के और गोस्वामी जी के पात्रों में 'अन्तरंमहदन्तरम्।'

(मानसमणि ४ । ३)

* शंका ३ *

जोहना-हेरना, पश्यना-जोगवना निरखना, लखना निहारना।
पेखना-अवलोकना सूझना-ताकना, देखना, चितवना ॥

आदि मानस में, दृष्टिपात करने पर, उपरोक्त विभिन्न शब्द आये हैं, तो 'कविवर' तुलसीदासजी ने, तत्तत स्थानों पर इनका प्रयोग किसी लक्ष्य को लेकर किया है। अथवा केवल छंद पूर्ति के लिये ही। (पं० रामरक्षित शुक्ल)

* समाधान *

अति शुचि मानस सुरुचिरस मानस में,
कबहुं कबहुं भाव भंगि कछु लखियाँ।
मञ्जु छबिकुञ्ज रसपुञ्ज मुखमञ्जु जहँ,
मँडरति रहतिहि मधुपालि सखियाँ॥
कौशल 'कुमार' कान्ति चन्द कुन्दमन्द जानि,
पल पल नील होति जीति हंस पखियाँ।
मृदुमित बोल मधुघोल डोल हंसिनीसी,
झुकीं शील भारन ते नेहभरी अँखियाँ॥

कोषों की प्राचीन परम्परा एक शब्द के सम्पूर्ण ज्ञात

पर्यायों को एकत्र लिखने की रही आई है। अतः आपका हेरना जोहना आदि शब्द संकलन उसी ढंग का है। अस्तु

आपके निर्दिष्ट वे शब्द यदि कहीं अकेले अकेले हों तो देखने के अर्थ में होते हैं और यदि एक से अधिक शब्द एक ही स्थान पर हों तो उनके अर्थ में कुछ सूक्ष्म भेद होता है नहीं तो वह स्थल पुनरुक्ति दोष से दूषित हो जाता है। एकार्थक शब्दों की यही समीचीन अर्थ परम्परा है। पर शब्द साहित्य के नियम रीत्यानुसार प्रत्येक शब्द के विभिन्न अर्थों का अनुमान किया जाना एवं जान लेना न्याय्य है। अतः आपके जिज्ञासित शब्दों के अर्थ-तारतम्य का विचार आपके उद्धृत क्रमानुसार ही किया जाता है।

१—हेरना अच्छी तरह देखना—

'जो कह रामलखन वैदेही। हिकरि हिकरि हय हेरहिं तेही।'

'कर कमलनि धनुसायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसिहेरत ॥

२—जोहना-विचार पूर्वक देखना—

'मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारिहु खेल जितावहिं मोही ॥'

'बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोहीं ॥'

३—पश्यना—लालसा (उत्कण्ठा) पूर्वक देखना।

पश्यामि राम निरामयम्।'

'पश्यन्ति यं योगी यतन करि करत मन गो बश सदा ॥'

४-जोगवना-देखना अर्थ माननेसे रक्षकत्व दृष्टिसे देखना यथा-

'जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे'

'पलकनैनफणिमणि जेहिभाँती। जोगवहिं जननि सकलदिनराती'

इन उद्धरणों से ज्ञात हो जायगा कि 'जोगवना' का

अर्थ रक्षा करना होता है, देखना अर्थ नहीं हुआ करता।

५—विलोकना त्राटक लगाकर (एकटक) देखना–

जेहि विलोकि सोइ जाइ सुखाई।'

'प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे। मन हर्षित सब भए सुखारे॥'

६—निरखना प्रेम पूर्वक देखना—

युवती भवन झरोखन लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागी॥'

'निरखि वत्स जनु धेनु लवाई।'

'निरखि २ रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि'

७—निहारना-बार बार देखना।

'निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सफल करौं उरगारी॥'

तिनकी ओट न देखिय बारी। मगन भये हरि रूप निहारी॥'

८—लखना, परीक्षा की दृष्टि से देखना।

'लखन लखेउ भा अनरथ आजू। यहि सनेह बश करब अकाजू'

'लखब सनेह सुभाय सुहाये। बैर प्रीति नहिं दुरै दुराये॥'

९—पेखना, प्रेक्षण (प्र + ईक्षण) वह देखना जिसमें आनन्द हो–

सब कोउ राम प्रेम मय पेखा।' पेखि प्रहर्षे मुनि समुदाई॥'

१०-अवलोकना, अकस्मात् किसी दृश्य पर दृष्टि पड़ जाना—

'अवलोके रघुपति बहु तेरे। सीता सहित न वेष घनेरे॥'

'जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि'

'अवलोकत अपहरत विषादा॥'

११—सूझना सामान्तः दृष्टिगोचर होना—

'लोचन सहस न सूझ सुमेरू।' चोंच भंग दुख तिनहिं न सूझा'

'सूझ न एकौ अंग उपाऊ।' सूझहिं रामचरित मणि माणिक'

श्रवण न सुनइ नयन नहिं सूझा।'

१२—ताकना; रोष पूर्वक दृष्टि निक्षेपकता—
'तमकि ताकि तकि शिव धनु धरहीं।'
'लखन लखेउ रघुबंशमणि ताकेउ हर कोदंड'
'भूप बचन सुनि इत उत तकहीं।' जिमि गज हरिकिशोर के ताके'
१३—देखना किसी वस्तुपर नैसर्गिक (स्वाभाविक) दृष्टि पड़जान
'देखे शिव विधि विष्णु अनेका।' विविधि वेष देखे सब देवा'
देखि देखि रघुबीर तन सुर मानव धरि धीर।'
'देखत विरति बिसारहिं ज्ञानी॥'
१४—चितवना, उत्तरोत्तर आतुरता पूर्वक दृष्टिपात करना।
'चितवत पंथ रहेउँ दिनराती।' चितव जो लोचन अङ्गुलिलाये'
प्रिया बचन मृदु गूढ़ सुनि चितयउ आंखि उघारि।'

इसी तरह अन्य शब्दों के पर्याय को समझना सुजनानुमोदित मार्ग है। श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी जी ने किसी पात्र के नामों के विभिन्न पर्याय जहाँ रखा है वहाँ वह भी विशेष तात्पर्य लिये हुये हैं। (मानसमणि ६।८)

——::*::——

* शंका ४ *

'सीय राममय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'

जबकि सीय राम मय सब संसार हो गया तो तुलसीदास जी ही कहाँ से बचे रहे। अगर तुलसी भी राम हो गये तो क्या राम राम' को प्रणाम करता है। (शंकरदत्त दुबे)

* समाधान *

सतीमूर्धन्या धन्या जनकनृपकन्या शुचितरा,
सदाऽभीता सीता रघुबर मननीता प्रियतमा।

सदा भक्तासक्ता जननिवत्सुखदा प्रियकरा,
महामायाऽमाया वसतु ममहृदये हि मितराम ॥

वेदों में ब्रह्म और जीवों को भिन्न भिन्न नित्यचैतन्य तत्व बतलाया है और ब्रह्म और जीव की उपस्थिति एक साथ साथ ही बतलाई गई है साथ ही वेद के अनेकों मंत्र यह भी बतला रहे हैं कि जीव और ब्रह्म भिन्न भिन्न तत्व होते हुए भी जीवगण सदैव ब्रह्म के आधीन ही रहते हैं—

'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृत्तं परिषस्व जाते।
तयोरेकं पिप्पलं स्वाद्वत्यन्यन्ननशन्नभिचाकशीति ॥
(ऋ० १ । १६४ । २०)

ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती।

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥
(अथर्व वेद १० । ८ । २५)

न तं विदाथ य इमा जजान युष्माकमन्युदन्तर बभूव ॥
(शु० यजुर्वेद वा० सं० १७ । ३१)

यच्चकिञ्चिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपिवा ।
अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥
(महाना० उप०)

ईश्वर का निवास चराचर मात्र के भीतर बाहर सर्वत्र है इसीलिये— 'सीयराम मय सब जग जानी।'
'सब के उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव ॥'

ब्रह्म में विशेषता यह है कि समस्त जीवों के साथ साथ (बाह्यरूपेण) भी रहता है और समस्त चराचर जीवों के

भीतर भी अनवच्छिन्न रूपेण व्याप्त रहता है।

य ईं चिकेत गुहा भवन्तम्। (ऋ० १ । ६७ । ७)

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिम् (ऋ० १ । १३० । ३)

....पणीनां परमं गुहा हितम् (ऋ० २ । २४ । ६)

गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिः। (ऋ० ३ । १ । ६)

...अग्ने गुहा वन्वन्त उपरां अभिष्युः। (ऋ० २ । ४ । ६)

अपगूढ़ं गुहाहितम्। (ऋ० १ । २३ । १४)

यज्ञो हीडोवो अन्तर आदित्याः (ऋ० ८ । १८ । १६)

नहि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् (ऋ० १० । ५३ । १)

न यत्परो नान्तर आदधर्षत् (ऋ० २ । ४१ । ८)

स सव्येन यमति व्राधतश्चित् (ऋ० १ । १०० । ६)

इत्यादि शतशः सहस्रशः वेद मंत्र मुक्त कण्ठ से उद्घोष करते हैं कि ब्रह्म समस्त चराचर जीवों के गुहा (हृदय) में स्थित है यह नहीं भूलना चाहिये कि जो वस्तु यन्मय होती है वह वही नहीं हो जाती, जैसे जलमय घट, तो घट जल नहीं हुआ प्रत्युत घट के भीतर जल है, ऐसे ही 'ब्रह्ममय जगत तो जगत ब्रह्म नहीं हुआ प्रत्युत जगत में ब्रह्मव्याप्त है उसी तरह तुलसीदासजी राममय हैं राम नहीं हैं और तुलसीदासजी में स्थित राम तो सारे जगत् को प्रणाम करते नहीं हैं प्रणाम तो करते हैं तुलसीदास नामक एक जीव विशेष पंक्ति में 'मय' न कहकर ऐसा शब्द कहा गया होता जिसका अर्थ होता कि सब जगत 'राम ही राम' है अन्य नहीं, तब आप की शंका ठीक होती कि 'राम ने राम को प्रणाम कैसे किया है ?'

(मानसमणि ५ । १२)

* शंका ५ *

महारानी श्रीकौशल्याजी, किस देश की राजकुमारी थीं ? महाराज दशरथ, और तत्पश्चात् सरकार श्रीरामचन्द्र के लिये ही कौशलेश विशेषण का प्रयोग पाया जाता है। सम्राट् दशरथ जी के पूर्ववर्ती, अज, दिलीपादि किसी भी रघुबंशी राजा के लिये नहीं, ऐसा क्यों ? (पं० रामरक्षित शुक्ल)

* समाधान *

अजपुत्र नमस्तुभ्यमजतात नमोऽस्तुते।
कौशलपते नमस्तुभ्यं कौशल्यापतये नमः॥

मध्य प्रदेश में जिसे आजकल छत्तीसगढ़ कहा जाता है वही दशरथ-विवाह से पूर्व का महाकौशल देश है। आज भी वह तभी से दक्षिण कौशल अथवा महाकौशल ही कहाता है। वर्तमान नागपुर ही तत्कालीन दक्षिण कौशल की राजधानी थी, उस प्रान्त मात्र के माण्डलिक राजा होने से ही कौशल्या के पिता राजा भानुमान कौशल्य भी कहाते थे। रहस्य ग्रन्थों के अनुसार श्रीराम माता कौशल्या का नाम कान्तिमती था, परन्तु पिता के कारण तत्कालीन प्रथानुसार वे भानुमती भी कही जाती थीं। राजा भानुमान के चार पुत्रों के बाद यही एक मात्र कन्या होने से माता पिता तथा भाइयों की अत्यन्त दुलारी होने के कारण देश सम्बन्धी नाम कौशल्या ही ख्यात था। जैसे—वचक्नु ऋषि की कन्या गार्गी-वाचक्नवी, केकय नरेश अश्वपति की कन्या रूपमालिनी-कैकेयी (भरत माता), मगध नरेश सुमित्र की कन्या गुणवती-मागधी और सुमित्रा

(लक्ष्मण शत्रुघ्न की माता), सीरध्वज मिथिलेश की जेष्ठा कन्या सीता—मैथिली, जानकी, वैदेही आदि, कुन्तिभोज देश के राजा पुरुजित् की गोद ली गई (पालिता) कन्या पृथा—कुन्ती, पांचालनरेश द्रुपद की यज्ञाग्नि जाता कन्या कृष्णा-याज्ञसेनी, पांचाली, द्रौपदी, विदर्भनरेश भीष्मक की कन्या रुक्मिणी-वैदर्भी भैष्मी, उग्रसेनानुजदेवक की कन्या सूर्या-देवकी, भृगुपुत्र-भार्गव, गोतमपुत्र-गौतम, कश्यपपुत्र-काश्यप, दशरथ पुत्र-दाशरथि, बसुदेव पुत्र-बासुदेव आदि कहाते थे, वही बात राममाता कौशल्या के सम्बन्ध में समझना चाहिये। आनन्द रामायणीय सारकाण्ड के प्रथम सर्गमें वर्णित है कि—

अयोध्यायास्तु सानिध्ये देशे श्रीकौशलाह्वये ॥ ३१ ॥
कोशलायां महापुण्यः कोशलाख्यो नृपोमहान् ।
तस्यासीद् दुहिता रम्या कौशल्या लोकविश्रुताः ॥३२॥

वहीं आगे चलकर कहा गया है कि—

ततः कन्या विवाहस्य सम्भ्रमं कोशलाधिपः ॥६०॥
कृत्वा स्वराज्यं जामात्रे ददौ प्रीत्या हि पुत्रिकाम् ।
तदारभ्य कौशलेन्द्रः प्रोच्यन्ते रविवंशजाः ॥६१॥

राजा भानुमान् ने अपने आधीनस्थ अन्य देशों का शाशनाधिकार अपने 'पुत्रों को देखकर खास कोशल प्रदेश दशरथ को दहेज में दे दिया। तब से अयोध्यापुरी कोशल या उत्तर कोशल कहलाने लगी और असली कोशल को तबसे दक्षिण कोशल या महाकोशल आदि कहा जाने लगा एवं कोशल नाम तो रहा ही। विशेष परंपरा गत होने से भानुमान् के वंशजों की पदवी भी कोशलेश बनी रही। और उभय

कोशल के प्रशाशक होने से दशरथ से लेकर पीछे के सभी अयोध्या नरेश कोशलेश कहाने लगे। बाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग पांच में अवध प्रदेश को ही उत्तर कोशल बतलाया है :—

कोशलो नाममुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यवान् ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता ॥६॥

महाभारत में दो कोशल का वर्णन बहुत स्पष्ट रूप से है। भीमने उत्तर कौशल अयोध्या के राजा वृहद्बल को जीता देखिये महाभारत सभापर्व अ० ३।

अयोध्यायां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं बृहद्बलम्।
अजयत्पाण्डवश्रेष्ठो नातितीव्रेण कर्मणा ॥
ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोशलान् ॥३१॥

माद्रीनन्दन सहदेव ने दक्षिण कौशल के राजा और उस (दक्षिण कोशल) से पूर्व के राजाओं को जीता।

देखिये महाभारत सभापर्व अध्याय ३१—

तथैव सहदेवोपि धर्मराजेन पूजितम्।
महत्या सेनया राजन् प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥१॥
ततो रत्नान्युपादाय पुरं भोजकटंययौ।
स विजित्य दुराधर्षं भीष्मकं माद्रिनन्दनः ॥११॥
कोशलाधिपतिं चैव तथा वेणातटाधिपम्।
कान्तारकांश्च समरे तथा प्राक्कौशलान् नृपान् ॥

प्राच्य विद्यामहार्णव श्रीनगेन्द्रनाथ बसु ने हिन्दी विश्व-कोष में लिखा है कि 'अमर कण्टक से दक्षिण कांगेर तक

और पूर्व की ओर नर्वदा तक जोंक नदी से पश्चिम वेणगंगा की उपत्यकाभूमि तक विस्तृत है। आजकल जिसे गोंड़वाना या छत्तीसगढ़ कहते हैं। वही दक्षिण कौशल है।' आज इस विक्रमकी इक्कीसवीं शताब्दी के छत्तीसगढ़ में 'दुर्ग, बिलासपुर, रायपुर बस्तर सरगुजा और रायगढ़' ये छः जिले हैं। नागपुर से रायगढ़ तक समस्त प्रान्त आज भी महाकौशल कहाता है। सुप्रसिद्ध चीनो पर्यटक युयेन चुयांग ने दक्षिण कोशल का पर्यटन करके विवरण लिखा है कि 'कलिंग राज से डेढ़ सौ कोस उत्तर पश्चिम चलने पर कोशल जनपद मिलता है। इस देश कापरिमाण चार सौ साढ़े सोलह ४१६॥ कोस है। इसकी प्रान्त सीमा चारो ओर पहाड़ और जंगल है। इसकी राजधानी लगभग सवा तीन कोस होगी। इसकी भूमि उर्वरा और प्रभूत शस्य शालिनी है। इससे करीब पचहत्तर ७५ कोस दक्षिण आंध्र राज्य है, अतः दोनों प्रशाशक कौशलेश कहाते, थे एक उदाहरण और भी देखलीजिये—

श्रीकृष्णकाल—महाभारतकाल में अयोध्या के राजा 'बीर' के पुत्र बृहद्बल कौरवों की ओर से लड़ते हुए चक्रव्यूह में अभिमन्यु के हाथ से मारे गये। जिन दिनों कौशल्यानन्दन श्रीरामजी के वंशज 'बृहद्बल' अयोध्या में कौशलेन्द्र थे उन्हीं दिनों दक्षिण कौशलेश भानुमान् के वंशज नग्नजित दक्षिण कौशल में राज्य करते थे और बंश परंपरागत होने से कौशलेश भी कहाते थे। उन्हीं नग्नजित की कन्या सत्या-नाग्नजिती के साथ व्याह श्रीकृष्णजी ने सात उद्धत सांड़ों को एक रस्सी में नाथकर किया था।

आज कुछ पाण्डित्याभिमानी लोग और कुछ संत महात्मा कहाने वाले लोग भी अनभिज्ञता से अथवा किसी साम्प्रदायिक द्वेष के वशीभूत होकर नग्नजित का भागवत में कौशलेश नाम देखकर उन्हें अयोध्या नरेश कहकर श्रीकृष्णजी की ससुराल अयोध्या कहते हुए भगवान् व्यास जी का उपहास किया करते हैं, जबकि व्यासजी ने महाभारत में नग्नजित के समय में अयोध्या नरेश का नाम 'वृहद्बल' देकर उन्हें दुर्योधन का सहायक लिखा है और सपुत्र नग्नजित को पाण्डवों का सहायक बताया है। (मानसमणि ४ । १२)

* शंका ६ *

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुणा निधानकी ॥
ताके युगपद कमल मनावौं।

यह वंदना श्री किशोरी जी के लिये लिखी गई है। अन्य सबके लिये युगपद कमल नहीं है। यहाँ भी केवल 'पद कमल मनावौं से ही बोध हो सकता था, पर 'युग' शब्द केवल माता जी के लिये ही क्यों व्यवहृत हुआ है ?

(पं० रामरक्षित शुक्ल रामायणी)

* समाधान *

एक तत्व सियराम, नारि पुरुष भये दासहित।
मन वच कर्म प्रणाम, तिन पद करत 'कुमार' नित ॥

सबके दोनों हाथों एवं दोनों पैरों के चिह्नों में अधिक साम्यता रहती है। अर्थात् दोनों हाथों के चिह्न प्रायः एक से ही होते हैं और दोनों पावों के भी चिह्न प्रायः एक से ही हुआ करते हैं। ऐसा मनुष्य मात्र में देखा जाता है। परन्तु श्री-

सीताराम युगल सरकार के दोनों हाथों एवं पावों के चिह्न बिल्कुल एक से नहीं हैं। दोनों पावों में भिन्न भिन्न चौबीस-चौबीस (कुल अड़तालीस) चिन्ह हैं और दोनों हाथों में भिन्न २ बत्तीस (कुल चौंसठ) चिन्ह हैं, और उनका अलग २ माहात्म्य भी ग्रंथोंमें वर्णित है। हां एक बात और भी है कि—

कर पद बायें चिन्ह सिय, दाहिन राम निहार।
सिय दाहिन बायें धरत, कर पद राम कुमार॥

इसलिये अर्थात् विभिन्न चिन्ह होने से केवल श्रीसीता-जी की ही 'युगपद' मनाकर बन्दना की गई है।

* शंका ७ *

श्रीरघुनायक जी की परिकर वन्दना में अन्य के लिये 'मन क्रम वचन' से बन्दना का प्रयोग क्यों नहीं किया गया ? क्या अन्य भरत प्रभृतियों को कपट से केवल वचन ही से वंदना की गई ? जो कि श्रीगोस्वामीजी ऐसा लिखते हैं कि—

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरनकमल बन्दौं सब लायक॥
(पं० रामरक्षित शुक्ल रामायणी)

* समाधान *

रामसीय पितु मातु बंधु सुत सखा दास गन।
सबही के पद पदुम नमौं शिर कर्म बचन मन॥
जिनकी कृपा कटाक्ष त्यागि सब मायिक बंधन।
गाइ नाम यश विमल 'कुमारहु' पावै पद जन॥

शब्द शास्त्र में "आदिरंत्येन सहेता।" (पा० अष्टा-ध्यायी १। २। ७१) सूत्र प्रत्याहार रचनार्थ प्रस्तुत किया गया है। मानस पर 'मयंक' नामक प्रसिद्ध टीका के कर्ता

महामहोपाध्याय पं० श्रीशिवलालजी पाठकने तो इसी प्रत्याहार की शैली के आधार पर आपनी दोनों टीका मयंक एवं दीपक में सैकड़ों दोहे लिखा है। दार्शनिक संसारमें किंचित परिवर्तन के साथ इसे उपक्रमोपसंहार का रूप देकर सूक्ष्मतात्पर्य का स्पष्टीकरण दार्शनिक महानुभाव किया करते हैं—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्य निर्णये॥
(शाबरभाष्यम्)

मानस में श्री रघुनाथजी के अन्तरंग परिकरों में प्रथम मातापिता ही आते हैं। उनकी वन्दना में—

दशरथ राउ सहित सब रानी। सकल सुमगल मूरति मानी॥
करौं प्रणाम कर्म मन वानी।

कहा गयाहै। यह अन्तरंग वन्दना का आदि=उपक्रम है। और-
पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरणकमल वंदौं सब लायक॥

यह सपरिकर वन्दना का अन्त-उपसंहार है। मध्य के भरतादि सभी परिजनों का ग्रहण इसी तरह से हो जाता है, अतः आपकी शंका को अवकाश नहीं।

* शंका ८ *

जब महर्षि श्री कौशिक जी श्रीअयोध्याजी से श्रीराम लक्ष्मणजी को स्वयज्ञ रक्षार्थ सिद्धाश्रम पर लिवा जा रहे थे तो मार्ग में ही ताड़का संहार करा देने के [कई दिन बाद अवभृथ स्नान के] कुछ प्रथम मारीच पलायन तथा ससैन्य सुबाहु वध हुआ। उसके कई दिन पश्चात् अहल्योद्धार हुआ। यही क्रम सभी राम कथाओं में मिलता है। तब इस क्रम के विपरीत—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
ऋषि हित रामसुकेत सुताकी। सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥

तापस तिय [अहल्या] उद्धार के बाद ताड़कादि वध नाम वंदना में गोस्वामी जी ने क्यों लिखा?

(पं० राजीवलोचनदासजी रामायणी)

※ समाधान ※

शिव नित जपैं कुटुम सह जोई। राम नाम मम रक्षक सोई॥

इस संभवित शंका का निरास तत्तप्रकरण निरीक्षण से आपही हो जाता है अर्थात् प्रकरण पर थोड़ा सा ध्यान देने पर वैपरीत्याभास तक नहीं रह जाता।

जहाँ श्रीरामभद्रजू के चरित्रों का प्रकरण है वहाँ का तो वही क्रम है जैसा कि दशरथ नन्दन श्रीरामभद्रजू ने किया था, अर्थात् प्रथम सुकेतसुता ताड़का वध तब सिद्धाश्रम में श्रीविश्वामित्र के यज्ञान्त-अवभृथ स्नान के कुछ पूर्व ससैन्य ताटिकासुत की बिबाकी करके पश्चात्-प्रेमनगरिया मिथिला डगरिया में गौतमाश्रम पर तापसी अहल्या को पत्थर से मनुष्यांगना करके महर्षि गौतम का रँड़आपन छोड़ाया था। परन्तु बालकांड दो० १८ से २७ तक नाम वंदना प्रकरण के दो दोहों में श्री नाम चरित्र का वर्णन है श्रीराम चरित्र का नहीं। अतः प्रधानता नाम यशकी है राम यश की नहीं। रामयश तो दृष्टांत मात्र है। दृष्टांत का सब अंग नहीं लिया जाता।; केवल प्रयोजन मात्र ग्रहण किया जाता है जितने से कि द्राष्टांतवैकृत्य न हो यही प्राचीन शिष्ट परंपरा है।

यदि दुराशानाश के पश्चात् कुमति का सुधरना कहा

जाता तो वैपरीत्य का आना अनिवार्य था क्योंकि विना कुमति सुधरे दुराशा का नाश होना असंभव है । अतः इस नाम वंदना प्रकरण में वैसा ही कहा गया है जैसा कि भव-नाश का क्रम है। अर्थात् सत्संग से, गुरु कृपा से भगवन्नाम जप में निष्ठा उत्पन्न होती है, नाम जप से प्रथम कुमति सुधरती है और तब दुराशा का नाश होता है। जब दुराशा नष्ट हो जाती है तभी दुख दोष नष्ट हो जाते हैं और तभी भव-भय का नाश हो जाता है, मोक्ष हो जाती है :-

सहितदोष दुख दासदुराशा। दलइ नाम जिमिरविनिशि नाशा॥

कुमति के रहते दुराशा और तज्जनित दुःखदोष बढ़ते ही जाते हैं, और कुमति दुराशा तथा दोष दुःख के रहते भव-भय कदापि नहीं छूट सकता, अतएव श्रीराम नाम का प्रताप क्रमशः कुमति, दुराशा, दुःख, दोष और भव अर्थात् संसृति चक्र का ध्वंश जिस क्रम से करता है उसी क्रम से यहाँ लिखा गया है। अतः कोई विपरीतिता नहीं है। (प्रेमसंदेश ४।२)

❋ शंका ६ ❋

नौमी भौमवार मधुमासा। सम्वत् सोरह सौ इकतीसा॥

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी श्री रामायण की रचना तिथि सम्वत् १६३१ चैत्र सुदी ६ मंगलवार लिखा है। डाक्टर ग्रियर्सन और उन्हीं के अनुयायी डाक्टर श्री माता प्रसाद गुप्त ने इस तिथि या इस तिथि के बार को गलत बतलाया है। उनका कहना है कि सम्वत् १६३१ में चैत्र शुक्ल नौमी बुधवार को आती है। डा० माता प्रसाद गुप्त प्रयाग विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर हैं। उन्होंने 'तुलसीदास' नामक

एक खोज पूर्ण ग्रन्थ लिखा है । इसी ग्रन्थ पर उन्हें डी० लिट० मिली है । [राजज्योतिषी पं० चन्द्रशेखर शास्त्री]

* समाधान *

निखिलभवनिदानं सर्वदा सद्विधानं,
परपरमप्रधानं चापबाणौ दधानम् ।
कृतमुनिजनमानं सज्जनैः सेव्यमानं
सकलसुखनिधानं नौमिनिर्वाणदानम् ॥

[पाश्चात्य विद्वानों की तो ऐसी दशा है जैसे किसी ने एक मूर्ख से कहा 'तेरा कान कौआ लिये जाता है ।" बस वह दौड़ पड़ा कौवे के पीछे । कान देखने की बात वह सोच नहीं सका । उन पाश्चात्य विद्वानों के भारतीय अनुयायी भी "अन्धेन नीयमानायथान्धा" हैं । आश्चर्य तो यह है कि राज ज्योतिषी जी भी इसी चक्कर में उलझ गये । (चक्र सं०मा०म०)

आप तो स्वयं ज्योतिषी नहीं नहीं राजज्योतिषी हैं आपको स्वयं गणना करके देखना चाहिये कि उस दिन मंगल पड़ता है या नहीं । भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पं० श्री सुधाकर द्विवेदी जी की गणना से तो मंगल पड़ना बताया जाता है । पर पाश्चात्य गणकों की गणना से नहीं, जो लोग बिना विचारे उसी पाश्चात्य प्रणाली को वेद वाक्य मान लेते हैं वे स्वयं तो अँधेरे में रहते ही हैं अपने विचित्र तर्क से दूसरों को भी अन्धकूप में निक्षिप्त करने में सचेष्ट रहते हैं नकटा सबकी नाक कटाना चाहता है । मैं ज्योतिष की बारी-कियों को नहीं जानता परन्तु आवश्यक कार्य पड़ने पर ज्यो-तिर्विशारदों के चरणों में पहुंच कर तथा पूछने एवं समझने

में संकोच नहीं किया करता। ज्योतिर्विदमहानुभाव बतलाते हैं और आपतो स्वयं ज्योतिषी होने के नाते जानते होंगे कि प्रति मलमास के पश्चात् तिथियों में एकाध विकला की न्यूनता आ जाती है, वह न्यूनता इतनी सूक्ष्म होती है कि उस पर सहसा ध्यान नहीं दिया जाता। उन्हीं विकलाओं का संकलन नहीं करने के कारण पाश्चात्य गणितज्ञों की चार सौ साल की तिथि गणना में एक दिन का समूल फर्क पड़ जाता है और तब वे मानस रचना काल की नौमी को बुध मान लेते हैं। नहीं तो उस वर्ष रामनौमी मंगल को ही थी। आप गणना करके देख लीजिये पर शुद्ध भारतीय प्रणाली से, पाश्चात्य प्रणाली से नहीं। गणना करते समय किसी शून्य तक के घटाने बढ़ाने की भूल न होने पाये। नहीं तो महापंडित बराह की सी दशा होगी जैसे कि वे एक शून्य के भूल जाने से अपने ही पुत्र (मिहिर) की सौ १०० वर्ष की आयु को दस वर्ष की मानकर अनर्थ कर बैठे थे।

आज के सभी पंचागों में वैष्णवी ब्रतों में कभी कभी 'स्मार्तानाम्' और 'वैष्णवानाम्' लिखा रहता है जिसका कारण स्पष्ट है कि वैष्णवी ब्रत मानने वालों में वैष्णवातिरिक्त एक और समुदाय है जिसे स्मार्त शब्द से स्मरण किया जाता है। वे दोनों समुदाय उपासना पद्धति से दो भिन्न भिन्न दल हैं अर्थात् स्मार्त वैष्णव नहीं और वैष्णव स्मार्त नहीं। परन्तु आज थोड़े दिनों से कुछ बुद्धि विशारदों ने वैष्णवों के दो प्रभेद मान लिये हैं और उनका नाम रख दिये हैं वैष्णव और स्मार्तवैष्णव, पर न मालूम क्यों स्मार्तशाक्त, स्मार्त

शैव आदि नहीं । संभवतः वैष्णवातिरिक्त शैव शाक्त सौर आदि सभी ही स्मार्त शब्द से अभिहित किये जा सकते हैं। वैष्णव और स्मार्तवैष्णव आज की नवीन कल्पना है इसकी चर्चा वेदों की तो बात ही दूर स्मृतियों, पुराणों और इतिहासादिकों में भी नहीं मिलती। पौराणिक मत से निगम-वेदानुयायी वैष्णव या श्रोत्रीय (श्रौत) एवं आगम (तंत्रानुयायी) स्मार्त कहे जाते हैं। यत्र तत्र वायु पुराण तथा स्कंध पुराण का उद्धरण मिलता है कि—

'इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः।'

हाँ प्राचीन महानुभावों ने श्रीवैष्णवों के जो दो भेद माने हैं उनका नाम अनन्य श्रीवैष्णव और साधारणी वैष्णव है। अनन्य श्रीवैष्णव वे हैं जो एकमात्र अपने इष्ट को ही परात्पर जानते हुएभी किसी अन्य देवीदेवतापर आक्षेप न करके सबको एक विशिष्ट शक्ति सम्पन्न मानते हुये सबको अपने इष्ट का दास मानते हैं एतदर्थ "तदभिन्नाभिन्नं तदभिन्नत्वम् ।" न्याय मानकर सबका आदर करते हैं और साधारणी वैष्णव वे हैं जो अपनी श्रेष्ठता का घमंड करके सबको तिरस्कृत एवं तुच्छ मानते हैं। परन्तु व्रतादि के सम्बन्ध में एवं दार्शनिक सिद्धांत में दोनों का मतभेद प्रायः नहीं पड़ता। अस्तु

अपनी गलत तिथि गणना की पुष्टि के लिये भी गोस्वामी जी को स्मार्तवैष्णव कहने का अक्षम्य अपराध लोग करने लगे हैं। वैष्णवों में जितने भी पूर्वाचार्य हुए हैं श्रीव्यास, शुक, बोधायन पुरुषोत्तम, रामानुज, निंबार्क, मध्व, रामानन्द और बल्लभादि किसी को या किसी के ख्यात

वंशजों को कहीं भी स्मार्तवैष्णव कहाने का उल्लेख नहीं मिलता। इसीतरह किसी शैव या शाक्तादि को गौणरूप में भी स्मार्तवैष्णव कहाना नहीं पाया जाता। वस्तु स्थिति तो यह है कि प्रायः अब से सौ वर्ष पूर्व यह (स्मार्तवैष्णव) शब्द ही नहीं रहा है ऐसा शब्दान्वेषण से निश्चय हो जाता है। अस्तु—सं॰ सोरह सै एकतीस के चैत्र शुक्ल नौमी को मंगल ही था और गोस्वामी जी अनन्य श्रीवैष्णव ही थे। उस दिन बुध मानना और गोस्वामी जी को स्मार्त मानना दोनों मान्यता भ्रांति पूर्ण है।

* शंका १० *

करउँ मनोहरमति अनुहारी। सुजन सुचितसुनि लेहु सुधारी॥

इस चौपाई में जो श्रीगोस्वामीजीने 'सुधारी' कहकर सज्जनों से अनुरोध किया है, वह अपनी किस त्रुटि के सुधारने के लिये निबंधगत त्रुटि या कवितागत पिंगल की?

(महांत रघुवरदास विशारद)

* समाधान *

पीत बसन कर धनुषशर शीश मुकुट उरहार।
बसहु सदा सिय लखन सह मम हिय 'रामकुमार'॥

इस चौपाई के 'सुधारी' शब्द का अर्थ त्रुटियों को दूर करके संशोधन करना (सुधारना) (इस्लाह करना) नहीं है क्योंकि श्रीरामजी ने जो कुछ चरित्र किया है उसका सुधार तो कोई करही नहीं सकता, ग्रंथगत निबंध–चरित्र शृंखला का भी सुधार कोई नहीं कर सकता क्योंकि यह शृंखला तो भगवान् शंकरजी की बाँधी हुई है—

'महादेव रचि मानस राखा। पाइ सुसमउ शिवासन भाषा॥'
'रामचरित मानसमुनिभावन। बिरचेउ शंभु सुहावनपावन॥'

अतः भगवान् शिव की सुहावन एवं पावन रचना में कौन सज्जन सुधार कर सकते हैं? उस शृंखला का संशोधन सुधार करने वाला तो कोई शंकरजी से भी विज्ञ होना चाहिये, जो असंभव है। और भाषा कविता पद्य का सुधार करना अनावश्यक है। क्योंकि—

'भणिति मोरि शिव कृपा विभाती।' तथा—
'गिरा ग्राम्य सियराम यश गावहिं सुनहिं सुजान॥'
'भणिति भदेशवस्तुभलि बरणी। रामकथाजगमंगल करणी॥'
'सब गुणरहित कुकवि कृतबानी। रामनाम यश अंकितजानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुधताही। मधुकर सरिस संतगुणग्राही॥'

जिज्ञासित चौपाई का अर्थ है कि-"मैं अपनी मति के अनुसार (अर्थात्–जस कछु बुधि विवेक बल मोरे।) श्रीराम चरित्र को पद्य बद्ध बना रहा हूँ। (अतः) हे सज्जन वृन्द ! सुन्दर चित्त–सावधानता पूर्वक किंवा चित्तको निर्मल करके अर्थात् छिद्रान्वेषणात्मिका बुद्धि का आश्रय न लेकर, सुनिये–आचार्य मुख से सुनिये। (और) सुनकर (इस राम चरित्र के रहस्य को) सुन्दर रूपसे (अपने सुचित्तमें) धारणकर लीजिये।

'सुधारी' शब्द का अर्थ सुन्दर रूप से धारण करना हृदयंगम करना ही ठीक है क्योंकि इसी की पुष्टि कवि के अन्तिम निर्णय से भी होता है कि—

शत पंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं।
दारुण अविद्यापंच जनित विकार श्रीरघुपति हरैं॥
(मानसमणि ५।८)

* शंका ११ *

जब इस ग्रन्थ के काण्डों का नाम सोपान (सीढ़ी) है तो उन्हें बराबर होना चाहिये था, या छोटाई-बड़ाई में कोई हिसाब होना चाहिये था, किन्तु उनमें ऐसानहीं पाया-जाता, ऐसा क्यों ? (सागरमल गिरधारीलाल कटक)

* समाधान *

धनि तुलसीकृत मानसहिं धनि तुलसी को ज्ञान।
भरेउ वेद वेदान्त रस, लखि नर हों मतिमान॥

आपकी यह शंका नई नहीं है प्रत्युत बहुत पुरानी है अर्थात् भारतेन्दु बाबू श्रीहरिश्चन्द्रजीने महामानसी श्रीवन्दन पाठक जी से किया था ऐसा मैंने श्रीभारतेन्दुजी की जीवनी में पढ़ा था परन्तु श्रीपाठकजी ने क्या समाधान किया था वह कहीं प्रकाशित न होने से मैं जान नहीं सका, इसीसे मैं भगवत् कृपाप्राप्त अपनी समझ के अनुसार समाधान करने की चेष्टा करता हूँ। श्री गोस्वामीपाद ने तो बहुत स्पष्टशब्दों में बतलाया है कि —

यहिमहँ सुभग सप्त सोपाना। ज्ञाननयन निरखत मनमाना॥

अतएव इनसोपानों को चर्मचक्षुओंसे ही देखकर इनका तत्व न आँकना चाहिये अपितु ज्ञाननयन से देखकर मनन करना चाहिये। चर्मचक्षु से देखने पर सोपान-काण्ड छोटे-बड़े भले दिखाई पड़ते हैं, परन्तु ज्ञानदृष्टि से देखने पर सब सोपान-काण्ड बराबर हैं। अर्थात् नानापुराणनिगमागम का समस्त सार सिद्धान्त-सभी काण्डों में एक रूपसे ही प्रतिपादित -वर्णित हैं। नानापुराणनिगमागमका समस्त सारसिद्धान्त—

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधि च ॥
वदन्तिसकलावेदा सेतिहासपुराणकाः ।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदांगवेदिनः ॥ (श्रीहारीतसं०)

इसका कुछ विशद वर्णन मेरे 'मानससिद्धान्त' ग्रंथ में है जो कि मानससंघ रामवन सतना से प्रकाशित हुआ है।

भाषा मानसकार की आज्ञानुसार मानसके सोपानों को ज्ञाननयन से ही देखना चाहिये। और ज्ञाननयन से देखने पर तो मन मानही जायेगा फिर तो किसी प्रकार की कोई शंका नहीं ही उठ सकेगी। (मानसमणि १० । ५)

* शंका १२ *

मानस के उपोद्‌घात प्रसंग में मानसरोवर की उपमा तथा सरयू की उपमा रामायण से दी गई है। मानसअंशी है और सरयू अंश। यदि रामायण मानसर है तो सरयू कहाँ है ? यदि रामायण सरयू है तो मानसर कहाँ ? अन्श अन्शी बराबर कैसे ? (वकील जगन्नाथप्रसाद विशारद देवरिया)

* समाधान *

कुन्देन्दुकर्पूरनिभं सुगौरं गंगाऽवतंसं च कुमारतातम् ।
शिवासमेतं वृषभेशयानं श्रीरामभक्तं शिवमानतोऽस्मि ॥

श्रीगोस्वामीजी ने रामायण प्रणयन करते समय रामायण का मानसरोवर वत् जैसा रूपक अपने हृदय में निश्चित किया था उसका वर्णन—

"जसमानस जेहि विधि भयउ" इस दोहे से आरम्भ करके "भयउ हृदय आनन्द उछाहू ॥" तक है । यह मान-

सरोसर की उपमा कविके हृदयगत रामचरित्र की है और सरयू की उपमा प्रचलित ग्रन्थात्मक महाकाव्य से है। अतः अंशी मानस कविके हृदय में था और अंश सरयू महाकाव्य के रूप में सबके सामने है। (मा० म० ५। ६)

*** शंका १३ ***

शिव समको रघुपति व्रतधारी। बिनुअघ तजी सती अस नारी॥
यहाँ सतीजी को बिनु अघ कैसे कहा ? (पं० लक्ष्मीधर पाठक)

*** समाधान ***

ज्यों तुलसीदल के बिना नहिं तुष्टत भगवान।
त्यों तुलसीकृत के बिना नर न होत मतिमान॥

सतीजी को बिनु अघ इसलिये कहा कि सतीजी अपने जिन दो अघों को समझकर सोचकर रही हैं—

'निज अघ समुझि न कछु कहि जाई।'

मैं जो कीन्हरघुपति अपमाना। पुनिपति बचन मृषा करिजाना॥

और यही वास्तव में अघ है। उन दोनों अघों में यहाँ सीता वेष से परीक्षा लेने को रघुपति का अपमान करना नहीं कहतीं क्योंकि रघुपति अपमान के बाद पतिबचन को मृषा जानना कहतीं हैं। अतः अपमान यह है कि—

ब्रह्म जो ब्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद॥

आदि रघुपति की ब्रह्मसत्ता को ही उड़ादेना रघुपति का अपमान—घोर अपमान करना है। पार्वतीरूप प्राप्त होने पर भी उन्होंने जब यही बात पुनः कही कि—

जौं नृप तनय तो ब्रह्म किमि नारि विरह मतिभोरि।

इस पर शंकरजी ने कोड़ियों गाली दिया। सचमुच यह अघ है। परन्तु शिवजी ने इस अघ पर सतीका परित्यागन नहीं किया था। त्याग का कारण तो सतीने जो सीताजी कारूप बनालिया था वहहै। किंतु सीतारूपतो सतीने परीक्षार्थ बनाया था। वेष बदलकर परीक्षा लेना वास्तव में कोई अघ नहीं है। नाटक-संचालकगण अभिनय कालमें बड़ी कुशलता से नाट्यगत पात्रोंका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ आदि का वेष आवश्यकतानुसार धारण करके अभिनय करतेहैं और समाप्ति पर पुनः अपने असलीरूपमें आ जातेहैं। परन्तु उन अभिनेताओं को अघी ठहराकर कोई जातिच्युत या समाज किंवा परिवारसे बहिष्कृत नहीं करता। किंतु यहाँ तो–

सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरी।

जबकि सत्पक्ष में लोक व्यवहार एवं शास्त्र दृष्टि से भी सतीजी सर्वथा निर्दोष थीं इसीलिये प्रायश्चितविधायक धर्मशास्त्रप्रणेता महर्षि श्री याज्ञवल्क्यजी के द्वारा बिन अघ कहा गया है। (मानसमणि ३। ११)

* पङ्क-शंका (सतीमोह) १४ *

महात्मा तुलसीदासने रामचन्द्र की उत्कर्षता, सर्वज्ञता और जितेन्द्रिता बताने के लिये ही सतीमोह की कल्पना की है। बाल्मीकीय, अध्यात्म, अद्भुत और आनन्द रामायणादि में सतीमोह की कथा नहीं है। बन में जब—

"हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दर्शन होइ।
गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोय॥"

भला जब सब जानही गये थे तो बिचारने की क्या

आवश्यकता थी। दर्शन होने पर जब शिवजीसे प्रणाम कराया तो सतीजी को भ्रम हुआ और तब शिवजी की आज्ञासे परीक्षा लेने गईं। तो सीता के वेष में भी रामने उन्हें पहिचान कर प्रणाम किया। तब सतीजी संकुचित होकर लौट पड़ीं, बीचमें रामने अपनी माया दिखाकर उन्हें और भयभीत कर दिया। शिवजी के पास गईं तो तुलसीदास ने अशिक्षिता एवं बद-चलन स्त्रियों की तरह उन सतीशिरोमणि से झूँठ कहलाकर शिवजी से त्याग कराया, पश्चात् शिवजी की सतासी हजार वर्ष की समाधि के बाद सतीजीने दक्षके यज्ञमें जलकर हिमा-लय के घर जन्म लेकर तप करके फिर शिवजी को पतिरूप से प्राप्त किया। यही सतीमोह का सारांश है। यह पूर्वापर बिरोध से भरा प्रसंग तुलसीदास ने रामानन्दीय वैष्णव होने के नाते साम्प्रदायिकता के कारण रामको ब्रह्म मानकर सती की निन्दा की है। सतयुगारम्भ के दक्ष की लड़की सती का त्रेतान्त में रहना सर्वथा असम्भव है। तारकासुर भी सतयुग में ही था और गोस्वामीजी के अनुसार तो त्रेतान्त तक में हिमवान पुत्री पार्वती का जन्म ही नहीं हुआ था तो उनके पुत्र कार्तिकेय ने सतयुग में तारक को मारा कैसे? सत्य तो यह है कि भागवत में ब्रह्मा-मोह देखकर तुलसीदास ने सती-मोह की कल्पना करली है। जैसे ब्रह्मा मोह की बात बलदेव-जी कुछ नहीं जान पाये वैसे ही 'लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित हृदय भ्रम भयउ विशेषा॥' ब्रह्मा को पीछे से बाल-बत्स सब ब्रह्मरूप दीखपड़े सब ब्रह्मा शिवादि देवगण उनकी स्तुति करने लगे, यही दशा यहाँ हुई। इस प्रसंग की कल्पना

में गोस्वामीजीने सतीजी का अपमान तो किया ही साथ २ और भी कई जगह साम्प्रदायिकता में अनौचित्य की सृष्टि की है। हाँ जो लोग यह मानते हों कि यह कथा कहीं से ली गई है, तुलसीदास की गढ़ीहुई नहीं है उन्हें अवश्य श्रम करके इस कथा का मूल खोजकर फिर कहना चाहिये कि यह कथा उनकी गढ़न्त नहीं है अमुक पुस्तक से ली गई है।

(पं० रूपनारायण पांडे 'कमलाकर' मानसमणि १।६)

* समाधान * (पङ्कप्रच्छालन)

अशेषवाग्जाड्यविनाशकारिणी, सर्वेश्वरी सर्वभयापहारिणी।
कवित्वकल्पद्रुमकुञ्जचारिणी पुनातु मां रामजनाधितारिणी॥

सीयरूप लखि सतिहिं तासुभ्रम टारन कारन।
करि प्रणाम कहि दत्तसुता कियकपट निवारन॥
विकल विलोकि सुमार्ग माहिं कौतुक दिखरावन।
शिव त्यागी जब सतिहिं सतीउर भाव बढ़ावन॥
कीन्ह परम तप हिमसुता शिवसन तिसु बिनती धरन।
सो हमैं सदा सब भांति सों होहिं राम मंगल करन॥

यह शंका १६१२ ई० में सरस्वती में और १६४२ ई० में मानसमणि में निकली थी बहुत बड़े आकार में पाँच पृष्ठों में। मैंने पुस्तक में संक्षिप्त कर दिया है। इसके लेखक हैं पंडित श्रीरूपनारायणजी पाण्डेय कमलाकर। मैंने दो जगह श्रीरूपनारायण पांडेय का नाम और भी पढ़ा है। एक तो उपन्यास सम्राट बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों तथा अन्य भी कई बङ्गीय उपन्यासों के हिन्दी रूपान्तरकार पं० श्रीरूपनारायण पाण्डेय कविरत्न का नाम तथा दूसरे कुछ

दिन से दुलारे लाल भार्गव की अध्यक्षता में मासिक नृत्य करने वाली लखनऊकी प्रसिद्धबीबीमाधुरीजानके 'ओस्तादजी' थे। परन्तु इनके नाम के पीछे कोई पदवी नहीं रहती थी और उपन्यासों के रूपान्तरकार के किसी किसी उपन्यास में उनकी पदवी 'कविरत्न' भी मिलती है । और प्रस्तुत लेख "सतीमोह" के लेखक के पीछे कमलाकर* अर्थात् कीचड़-पंक लगा हुआ है। इससे मैं निश्चय न कर सका कि तीनों व्यक्ति भिन्न हैं या एक ही। अस्तु तीनों तीनहों वा एक हमें इससे क्या करना है हमें तो आज कीचड़ से ही काम पड़ गया है। मानसमणि आलोकित होने से तीस बर्ष प्रथम प्रयाग की सरस्वती पत्रिका की सहायता से इन्होंने साहित्याकाश-सूर्य्य श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज पर यह कीचड़ उछाला था। उसे मैंने नहीं देखा, देखता भी कैसे उस समय तो मेरा यह (अच्युतगोत्रीय) जन्म ही नहीं हुआ था । परन्तु आज सन् १९४० में देखता हूँ कि मानसमणि द्वारा वही ३० बर्ष का सड़ा कीचड़ फिर उछाला गया है।

सेवक का काम है सेव्यको स्नान आदि कराना। भगवान् श्रीसीतानाथ के नाते मैं भी अपनेको श्रीरामचरित्र मानस तथा मानसकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज का एक तुच्छ सेवक मानता हूं। इसलिये श्रीगोस्वामीजी के अंगों में लगाये हुए इस पंक के प्रच्छालन का प्रयत्न मैं भी करना चाहता हूं आगे जैसी श्री जू की इच्छा।

---

* कमल + आकर = कमलका उत्पत्ति स्थान कीचड़ (पंक) है।

लेख की भूमिका देखने से आपाततः यही मालूम पड़ने लगता है पाण्डेय जी एक अच्छे विद्वान हैं। और चाहे अन्य विषयों के विद्वान हों भी परन्तु उन्हें श्रीरामचरित्र विषयिक संस्कृत साहित्य का ज्ञान तो शायद अपने 'लांगूलदेवशर्म्मा' के इतना भी नहीं है। यदि होता तो सतीमोह के साथ स्वयं भी महामोह में मग्न होकर इस लेख को न लिखते। आपने कदाचित् किसी संस्कृत विद्वान् के मुख से श्रीवाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण अद्भुत रामायण और आनन्द रामायण आदि का नाम सुन लिया था, इन रामायणों का अवलोकन अध्ययन नहीं किया था। यदि इन्हें पाठ किया होता तो साफ मालूम पड़ जाता कि आनन्द रामायण में सतीमोह का उल्लेख कितने स्पष्ट रूप से है।

अद्भुत रामायण में श्रीरामजी के बनबास की स्पष्ट कथा भी नहीं है तब उनमें सतीमोह की कथा कैसे रहती। अद्भुत रामायण तो एक छोटा सा २७ सर्गों का डेढ़ हजार से भी कमती श्लोकों वाला खण्ड ग्रन्थ है, सो भी उसमें सत्यो-पाख्यानादि खण्ड काव्यों सरीखे क्रमशः किसी चरित्र का वर्णन नहीं है, उसमें की कथायें तो मण्डूकप्लवन न्याय से की गई हैं। पंचदशीकार स्वामी विद्यारण्यजी ने अध्यात्म रामायण में सतीमोह की कथा का सूत्र अत्यन्त गोप्यरूप से निहित किया है। उसमें से कुछ का दिग्दर्शन गोस्वामी जी के रामचरित्रमानस के मिलान पूर्वक यहाँ दिया जाता है।

अध्यात्म रामायण बा० कांड सर्ग १—

"[1]तथापि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ।
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ॥१२॥
"यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीता कृतेऽनेन परेण० १४"
'[2]प्रश्नोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद्ब्रूत मे संशय भेदिवाक्यम् १५

हाँ आद्यार्षकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में सती-मोह की कथा नहीं है किन्तु इसीलिए कल्पित नहीं मानी जा सकती। श्रीवाल्मीकीय रामायण में तो नारदमोह, भुशुण्डी, मनुशतरूपा आदि की कथायेंभी नहीं हैं परन्तु अन्यत्र मिलती हैं इसलिये माननीय और प्रामाणिक हैं। फिर प्राचेतस् महर्षि वाल्मीकि जी ने तो नाना-पुराणादि से ले लेकर अपना आदि काव्य लिखा नहीं था। उन्होंने तो स्वतंत्र रूपसे अपनाकाव्य लिखा है। श्रीगोस्वामीजी ने तो अनेकों ग्रन्थों से कथानक लेकर अपना मानसमहाकाव्य तैयार किया है। हाँ एकाध कथा कवि कल्पना से भी लिखी जैसे सीताजी का गिरिजा पूजन (बालकांड) आदि क्योंकि यह प्रसंग गोस्वामीजी से प्रथम के किन्हीं भी प्राचीन एवं माननीय ग्रंथों में नहीं मिलता और जिसका प्रमाण नहीं मिलै वह कल्पित कही ही जा सकती है। परन्तु इसके लिये गोस्वामीजी दोषी भी नहीं कहे जा सकते क्योंकि उन्होंने पहिले ही कह दिया है कि

---

१ "जो नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारि विरह मतिभोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमित बुद्धि अति मोरि ॥
अजहूँ कछु संशय मन मोरे । करहु कृपा बिनवौं कर जोरे ॥"
२ तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना । कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।

"क्वचिदन्यतोऽपि" नाना पुराण निगम, आगमादि से अन्यत्र की कौन कथा है ! तो अपने मनकी अर्थात् कविकल्पनाप्रसूत। परन्तु रामचरित्रमानस में सतीमोह का प्रसंग कवि कल्पना-प्रसूत नहीं है क्योंकि इसका प्रमाण अन्य प्रचलित एवं मान-नीय ग्रन्थों में मिलता है। हम पहिले आनन्द रामायण को ही उठाते हैं जिसकी दोहाई कि पाण्डेयजी भी देते हैं कि आनन्द रामायण में सतीमोह की कथा नहीं है।

श्रीरामचरित्र मानस की तरह आनन्द रामायण के भी प्रधान वक्ता भगवान् शंकर जी ही माने गये हैं। आनन्द रामायणके सार कांड में वर्णित है कि शंकरजी सीताहरण की कथा कहकर जब श्रीरामजी का विलाप प्रलाप कहने लगे तो श्रीपार्वतीजी से उनके पूर्व जन्म-सती शरीर का स्मरण दिलाते हुये कहा कि 'देवि ! रामजी को विलाप करते ढूँढ़ते हुये देख कर तुमने मुझसे पूछा कि—

"[1]त्वया यस्य जपो नित्यं क्रियते राघवस्य च।
[2]सोऽयं स्त्रीविरहात्पश्य मूढ़वद् भ्रमते वने॥
(आनन्दरामायण १।७।३८)

'तवेति वचनं श्रुत्वा तदा त्वामहमब्रुवन् ॥३६॥
[3]देवि साक्षान्महाविष्णुस्स्वयं रामो महीतले।
शिक्षार्थं सकलांस्लोकान् मूढ़वद् भ्रमते वने ॥४०॥

---

१ तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती
२ खोजइ सोकि अज्ञ इव नारी॥
३ मुनिधीर योगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावहीं॥

[1]नारीसंगो नरैस्त्याज्यः सर्वदाऽत्रेति शिक्षयन् ।
नारीविषयजं दुःखमीदृशं भ्रमकारकम् ॥४१॥
दर्शयन् सकलांल्लोकानिति सोऽत्राटते वने ।
[2]इति मद्वचनं श्रुत्वा तत्परीक्षार्थमुद्यता ॥४२॥
[3]त्वं गताऽसिसमीपं श्रीराघवस्य तदा वने ।
सीतारूपेण तं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं वचः ॥४३॥

इसके आगे के प्रकरण सती राम संवाद को आनन्द रामायण के अनुसार सती पर लांच्छन लगने के डर से गोस्वामी जी ने नहीं लिखा। केवल रामजी के वाक्यों का ही उल्लेख किया, सती के वाक्यों का नहीं। आनन्द रामायण में सती ने जो रामजी से कहा है उसका उल्लेख इस तरह है कि-सती ने रामजी से कहा कि—

राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम् ।
क्रीडस्वात्रमयसार्धमेहि शीघ्रं सुखीभव ॥४४॥

अर्थ—हे कमलनयन रामजी अपने सामने स्थित मुझ जानकीको देखिये, जल्दी आइये, मेरे साथ यहीं क्रीड़ा कीजिये और सुखी हो जाइये। (इस श्लोक को यदि कमलाकरजी ने देखा होता तो वे स्वयं अपने ही कमलाकर—कीचड़ में डूब

सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भक्त हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥

१ कामिन्ह कै दीनता देखाई धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई।

२ चलीं सती शिव आयसु पाई ॥

३ पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहि जेहि आवत नर भूप ॥

जाते कि सतीजी ने लक्ष्मण का भी कुछ संकोच न किया और निर्लज्ज स्वैरिणी सरीखे रामजी से कहने लगीं कि "क्रीड़स्वात्रमयासार्धम्")

"त्वदुक्तं राघवो श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽब्रवीत् ।
जानाम्यहं त्वं कासीति सीता त्वंनासि वेद्म्यहम् ॥४५॥
त्वं किं सीतास्वरूपेण मोहयस्यात्र मां वने ।
एवं पुनः पुनः प्रोक्ता यदा त्वं राघवेण हि ॥४६॥
तदा त्वया तत्स्वरूपं ज्ञातं सत्यं मयेरितम् ।
ततो नत्वा रामचन्द्रं प्रार्थयित्वा पुनः पुनः ॥४७॥
आगताऽपि पुनर्मात्वं कैलाशशिखरेऽमले ॥४८॥
त्वं का त्वंकिमिति प्रोक्ता राघवेण पुनः पुनः ।
या त्वं सा दण्डके जाता त्वंका नाम्न्यम्बिकाबने ॥४९॥
त्वं लज्जिताऽसिरामेण यत्र तत्र तव स्थले ।
त्वंलज्जापुर नाम्नाऽऽसीन्नगरं दण्डकेबने" ॥५०॥

पार्वती से उनके पूर्वजन्म के मोह (सतीमोह) का वर्णन करके अन्त में शंकरजी ने यह बतलाया कि जहाँ पर श्रीरामजी ने तुमसे "त्वं का" इस तरह बारंबार कहा था वहाँ पर दण्डकबन में आज भी 'त्वंका देवी' नाम से तुम्हारी पूजा होती है। और जहाँ पर तुम लज्जित हो गई थीं वहां पर एक नगर बस गया है जिसका नाम 'त्वंलज्जापुर' है (वर्तमान काल में जो तुलजापुर है उसीके लिये कहा जाता है कि यही प्राचीन 'त्वंलज्जापुर' है।) यहाँ तक तो हमने पंडित जी के गिनाये हुए ग्रन्थों में से आनन्द रामायण का प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाया। अब हम एक ऐसे ग्रंथ का भी किंचित्प्रमाण

दे देते हैं जिसका कि नाम भी कदाचित् पाण्डेयजी ने न सुना हो। वह ग्रन्थ शायद छपा नहीं है परन्तु प्राप्य है। उसका नाम है 'वीरभद्र चम्पू'। उसमें भी सतीमोह का सविस्तर वर्णन है। जिस समय सती ने सीता का रूप धारण किया और आगे से दिखाई पड़ीं तो उन्हें देखते ही श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयों ने पहचान लिया फिर श्रीरामजी ने लक्ष्मण कुमार से कहा कि 'वत्स लक्ष्मण ! दनुज, नाग, नर, बानर, और किन्नर आदिकों की कौन चर्चा देखो (भगवान् शंकर की) माया भी मेरी दुरत्यया माया से मोहित होगई हैं-

[1]"किं वाच्या दनुजानागावानराकिन्नरानराः।
वत्स लक्ष्मण पश्यैतां मायां मायाविमोहिताम् ॥"

ऐसा लक्ष्मण से कहकर सीतारूपधारिणी सती के पास जाकर श्रीरामजी ने कहा कि हे दक्ष कन्ये ! सति ! हे शंभुभामिनि ! सति ! मैं राम तुम्हें नमस्कार करता हूं। भला यह तो बतलाइये कि धूर्जटी देव भगवान् शंकर को आपने क्यों छोड़ दिया। यह तो पतिव्रताओं का काम नहीं है कि पति को त्याग कर ऐसे निर्जन बन में अकेले घूमे। अतः आप क्यों घूमती हैं सती होकर भी—

[2]"नमस्ते दक्षतनये ! नमस्ते शंभुभामिनि।
[3]किमर्थं धूर्जटीं देवं त्यक्त्वा भ्रमसि कानने ॥"

---

१ निज माया बल हृदय बखानी। बोले बिहँसि राममृदु बानी॥
२ जोरि पाणि प्रभु कीन्ह प्रणामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू
३ कहहु कहाँ छांड़ेहु वृष केतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

यह तो हुआ सतीमोह कथा के स्रोतों के प्रमाण का दिग्दर्शन, ऐसे एक दो नहीं कई ग्रन्थ हैं जिनमें महाशिव-संहिता का रामभक्तिपटल, बीरभद्रचम्पू और आनन्दरामायण जिनमें कि सतीमोह की सांकेतिक चर्चा है, तथा लोमश-रामायण और शिवपुराण में विस्तार से है, लोमशरामायण तो अप्रकाशित है पर शिवपुराण अनेक स्थानों से प्रकाशित और सुप्राप्य है अतः उसके कुछ उद्धरण मानस की पंक्तियों के साथ देखिये शिवपुराण रुद्रसंहिता अध्याय चौबीस—

एकस्मिन् समये रुद्रः सत्या त्रिभवगो भवः ।
आगत्य दण्डकारण्यं पर्यटन् सागराम्बरम् ॥२२॥

एकबार त्रेता युगमाहीं । शंभु गये कुंभजऋषि पाहीं ॥
संग सती जग जननि भवानी ।

तत्र रामं ददर्शासौ लक्ष्मणेनान्वितं हरः ।
अन्विष्यन्तं प्रियां सीतां रावणेन हृतां च्छलात् ॥२३॥

'शंभु समय तेहि रामहिं देखा ।' खोजत बिपिन फिरत दोउभाई'
'तेही समय जाय दशशीशा ।' करि छल मूढ़ हरी वैदेही ॥'

यतस्ततश्च पश्यन्तं रुदन्त हि मुहुर्मुहुः ॥२४॥

आश्रम देखि नयन जल छाये । बिरह बिकल नर इव रघुराई ॥

पूर्णकामो वराधीनः प्राणमत् स मुदाहरः ॥२५॥

जय सच्चिदानन्द जग पावन । तिन नृप सुतहिं कीन्ह परनामा ॥

मुदितः सु प्रसन्नात्मा भवो भक्त इवाधुना ॥३४॥

भये मगन छबि तासु विलोकी । अजहुं प्रीतिउर रहति न रोकी ॥

अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः ॥४०॥

अवतरेउ अपने भक्तहित निजतंत्र नित रघुकुलमणी ॥

श्रुत्वापीत्थं वचः शम्भोर्न विशश्वास तन्मनः ॥४१॥
लाग न उर उपदेश यदपि कहेउ शिव बार बहु ॥
शिवउवाच—शृणुमद्वचनं देवि न विश्वसति चेन्मनः ।
तव रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ॥४३॥
गत्वा तत्र स्थितस्तावत् बटे भव परीक्षिका ॥४४॥
जौं तुम्हरे मन अति संदेहू । तौ किन जाइ परीक्षा लेहू ॥
करेहु सो यतन विवेक विचारी । 'तबलगि बैठि अहौं बटछाहीं'
इत्थं विचार्य सा सीताभूत्वा रामसमीपतः ।
अगमत् तत्परीक्षार्थं सतीमोह परायणा ॥४७॥
पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता कर रूप ।
आगे होइ चलि पंथ तेहि जेहि आवत सुरभूप ॥
श्रीराम उवाच—प्रेमतस्त्वं सती ब्रूहि क शम्भुस्ते नमोनमः
एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना ॥४६॥
कहहु कहां छाँड़िहु वृषकेतू । विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥
इति रामवचः श्रुत्वा चकिताऽऽसीत्सतीतदा ॥४८॥
राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संचोच ॥
अध्याय २६—अचिन्तत् पथि सा देवी संचलंती पुनः पुनः ।
किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शंकरसन्निधौ ॥४३॥
सतीसभीत महेशपहिं चलीं हृदय बड़ शोच ॥
मैं शंकर कर कहा न माना । 'जाइ उतर अब देहौं काहा ॥'
चलीं सती जहँ रहे गिरीशा ॥
अथ तां दुःखितां दृष्ट्वा प्रपच्छ कुशलं हरः ॥
प्रोवाच बचनं प्रीत्या तत्परीक्षा कृता कथम् ॥४५॥
लीन्ह परीक्षा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥

श्रुत्वा शिववचो नाहं किमपि प्रणतानना ॥४६॥

कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाईं । कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं ॥

अथ ध्यात्वा महेशस्तु बुबोध चरितं हृदा ॥४७॥

तब शंकर देखेउ धरि ध्याना । सती जो कीन्ह चरित सबजाना ॥

कुर्यां चेद् दक्षजायां हि स्नेहं पूर्वं यथा महान् ।

नश्येन्मम पणः शुद्धो लोकलीलानुसारिणः ॥५०॥

जौ अब करौं सती सन प्रीती । मिटै भक्ति पथ होइ अनीती ॥

इत्थं विचार्य बहुधा हृदा तामत्यजत्सतीम् ॥५१॥

यहितन सतिहिं भेंट मोहिं नाहीं । शिव संकल्प कीन्ह मनमाहीं

चलन्तं पथि तं व्योमवागुवाच महेश्वरम् ।

धन्यस्त्वं परमेशान त्वत्समो न तथा पणः ॥५७॥

चलत गगन भइ गिरा सुहाई । जै महेश भलि भक्ति दृढ़ाई ॥

तुम बिनु असप्रण करै को आना । रामभक्त समरथ भगवाना ॥

ततोऽतीव शुशोचाशु बुद्ध्वासा त्याग आत्मनः ॥५८॥

प्रभु मोहिं तजेउ हृदय अकुलानी ॥

सत्यामाप स कैलाशं कथयतः विविधाः कथाः ॥६५॥

बरनत पंथ विविधि इतिहासा । विश्वनाथ पहुंचे कैलाशा ॥

वटे स्थित्वा निजं रूपं दधौ योगी समाधिभृत् ॥७०॥

शंकर सहज सरूप संभारा । लागि समाधि अखंड अपारा ॥

यह तो किंचिद्दिग्दर्शन मात्र है। शिवपुराण देखने से मालूम होता है कि मानस का सती शिव चरित्र शिवपुराण का अक्षरानुवाद है।

पाण्डेयजी ने अपने लेख के उपसंहार में जो जिज्ञासा की है कि सतीमोह की कथा कहां से ली गई ? इसका समा-

धान तो हो चुका। अब आपकी अन्य बातों पर विचार कर लेना अनुचित न होगा। आपने जो "गये जान सब कोय" का 'सब कोई जान गये हैं' ऐसा अर्थ करके अनर्गल शंकायें की हैं उससे तो अपने कमलाकर (कीचड़) नाम को सार्थक कर दिया। आपको इस दोहे का अर्थ नहीं समझ पड़ा तो किसी रामायण के विद्यार्थी से ही पूछ लिये होते। उसका अर्थ यह नहीं कि 'सब जान गये हैं कि ये अवतार हैं मनुष्य नहीं।' यह तो आपने अनर्थ किया है। उसका अर्थ तो यह है कि 'शिवजी ने हृदय में बिचारा कि यदि मैं श्रीरामजी के पास जाता हूँ तो सामने पड़ने से दण्ड-प्रणाम और स्तुति तो जरूर ही करूँगा (जैसा कि अन्य अवसरों पर लंका, अयोध्या आदि में हुआ है।) और मैं जिनको प्रणाम स्तुति करूँगा उन्हें तो लोग जानही जायेंगे कि ये मनुष्य नहीं हैं। यदि मनुष्य होते तो भला यह कैसे हो सकता कि—

शंकर जगत वंद्य जगदीशा। सुर नर सब नावहिं शीशा॥
तिन नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा॥
शम्भु बचन पुनि मृषा न होई॥

इत्यादि जैसे सतीने सोचा वैसे सब कोई सोचतेही जिसका परिणाम कि संसारके लिये बड़ा भयानक होता। वह इस तरह कि रावण तब श्रीरामजी के हाथों मरताही नहीं। क्योंकि—

रावण मरण मनुजकर याँचा। प्रभु बिधि बचन कीन चह साँचा

परन्तु इस हालत में रावण को यह कहने की जगह मिल जाती कि जगद्वन्द्य भगवान् शंकरजी जिनको प्रणाम, स्तुति करते हैं वे मनुष्य कब हो सकते हैं अतः मैं इनके हाथ से नहीं मर सकता। क्योंकि मैंने तो—

नरके कर आपन बध बाँची । (है)

ऐसी समस्या उपस्थित होने पर या तो रावण न मारा जाता या ब्रह्मा का वरदान झूँठा होता। इन्हीं दो कारणों से 'गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु० ।' परन्तु मेरे (शिवके) जाने पर तो "जानसब कोय।" यह असमंजस रावण के मरने तक ही था रावण बध के बाद तो फिर कोई अड़चन रह ही नहीं गई। इसी से सीतारघुपति मिलन के बाद लंका में और राज्याभिषेक पर अयोध्या में निःसंकोच भाव से जाकर खूब प्रेम और विस्तार के साथ स्तवन किया।

नारदजी ने सती शरीर में नहीं किन्तु पार्वती शरीर प्राप्त होने पर कहा था कि—

'यहिकरनाम सुमिरि संसारा, तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा'

आज भी सर्वत्र हिमालय सुता पार्वती की पूजा होती है दाक्षायणी सती की नहीं। अतएव इस विवेचनमें भी आप अपने ही बौद्धिक-कमलाकर (कीचड़) में फँसे दिखाई देते हैं।

पाण्डेयजी ने सती का पति से मिथ्या बोलने और पति की बात न मानकर सती द्वारा स्वयं पति का अपमान करना लिखकर पुनः दक्षके अपमान से 'प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ।' लिखने से गोस्वामीजी को पूर्वापर विरुद्ध लिखने वाला सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है। परन्तु आपको यह भी विचारना था कि दोनों जगह पर सती की स्थिति कैसी थी। अस्तु अब समझ लेना चाहिये कि-दण्डकवन में सती संशयात्मा थीं। यथा—

'अस संशय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥'

और इसका परिणाम भगवान श्री कृष्णजी के शब्दों में यह है कि—"संशयात्मा विनश्यति" क्योंकि—

'अस संशय आनत उर माहीं। ज्ञान विराग सकल गुण जाहीं'

यही विनाश होना है वैसे आत्मा तो अमर है उसका मरना यही है कि—

काल दण्ड गहि काहु न मारा। हरै धरम बल बुद्धि बिचारा॥

हरि माया से अभिभूत होने पर ही धर्म वल-बुद्धि बिचार (ज्ञान) आदि चले जाते हैं और बीरभद्र चम्पू में भी स्पष्ट शब्दों में यही कहा गया है कि—

वत्स लक्ष्मण पश्यैतां मायां मायाविमोहिताम्।

तात्पर्य यह कि सती दण्डकारण्य में राममाया से अभिभूत थीं अतः बौराई थीं यथा—

बहुरि राम मायहिं शिर नावा। प्रेरि सतिहिं जेहि झूँठ कहावा।
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती शरीर रहिउ बौरानी॥

तभी तो—'भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा।
भ्रम वश वेष सीयकर लीन्हा॥'

अतः हरिमाया से मोहित होने के कारण सती ने सीता वेष धारण करके जगत्पति श्रीरामजी का और आज्ञोल्लंघन करके एवं झूठ बोल करके निजपति श्री शिवजी का अपमान किया। परन्तु जब माया हट गई तो वहाँ भी—

निजअघ समुझि न कछु कहिजाई। तपइ अवाँइव उर अधिकाई

और दक्ष यज्ञ के समय सती के ऊपर से राम माया हट गई थी तभी तो—"प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ॥"

कुम्हार एक दण्ड के द्वारा अपने चक्र (चाक) को

घुमाता है और जब दण्ड को चक्र से अलग कर देता है तब भी चक्र कुछ देर तक घूमा ही करता है। यही हालत संसार की है। वेद में परमात्मा को इसीलिये कुम्हार कहा गया है कि "नमः कुलालेभ्यः।" परमात्मा कुम्हार है माया दण्ड है यह जीव चाक है संसार-एकपादविभूति कीला है (जिसके आश्रित चाक रहता है) इसी तरह राममाया दण्ड जब सती चाक से हट गया तो भी कुछ काल तक घूमता बना रहा। यह बात स्वयं पार्वती के शब्दों से पायी जाती है यथा—"अजहूं कछु संशय मन मोरे॥" जब माया दण्ड का स्पर्श था तब वह संशय अपार था—

असंसंशय मन भयेउ अपारा।

मालूम होता है कि परमप्रसिद्ध परम प्रामाणिक एवं नगर से ले गवई' तक सर्वत्र प्रचलित भारत के प्रत्येक कोने २ में हिन्दू मात्र में प्रतिष्ठित पांडित्यपूर्ण महर्षि व्यास प्रणीत श्री मद्भागवत महापुराण का दर्शन तक भी पाण्डेयजी ने नहीं किया था। क्योंकि आपने यदि भागवत को सरसरी निगाह से भी देख लिया होता तो यह कभी न कहते कि दाक्षायणी सती ने अपने पतिदेव शंकरजी की आज्ञोल्लंघन नहीं किया। बाबा तुलसीदासजी ने सती को अपमानित करने के लिये ही सती से पति की आज्ञा भंग करवाया है। गोस्वामीजी से हजारों वर्ष पूर्व द्वापरान्त में ही व्यास जी ने श्री मद्भागवत में लिखा है कि 'सतीजी पति की आज्ञा भंग करके शिवजी को छोड़कर अकेले ही एक सामान्य स्वैरिणी स्त्री सरीखे पिता के घर चली गईं'। पीछे से शिवजी ने उनका कंघी कबरी आदिक

सामान अपने गणों से भेजवा दिया।' मूल श्लोक देखिये—

भागवत् स्कन्ध ४ अध्याय ४

सुहृद्दिदृक्षुः परिशंकिता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽससा
सुहृद्दिदृक्षा प्रतिघात दुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलातिविह्वला।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥२॥
ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा।
पित्रोरगात्स्त्रैण विमूढ़धीगृहान्प्रेम्णाऽऽत्मनोयोऽर्धमदात्सतांप्रियः

अतः या तो पाण्डेयजी को सती को पति की आज्ञा भंग करने वाली मानना पड़ेगा और या तो फिर आपने जैसे गोस्वामीजी को साम्प्रदायिक दुराग्रही एवं मिथ्यावादी मान कर कल्पित कहानी लेखक लिख मारा है वैसे ही भागवत्कार भगवदवतार श्री व्यास जी को भी कल्पित कथा का लेखक मानना पड़ेगा।

यहाँ पर भी भागवत और रामचरित्रमानस के कथन में कितना अन्तर है। गोस्वामीजी ने इस प्रसंग पर सती के चरित्र को सुव्यस्थित रखकर कितनी प्रतिष्ठा किया है कि दण्डकारण्य में तो राममाया से मोहित होने के कारण सती ने पति की आज्ञा का उल्लंघन किया था। परन्तु दक्ष यज्ञ के समय तो सती हरिमाया से आच्छादित नहीं थीं इसलिये आज्ञा का उल्लंघन न करके बार-बार आज्ञा देने का ही आग्रह किया है (और अपने प्रेम पात्र किंवा अभिभावक से ऐसा करना अनुचित नहीं है) परन्तु भागवत के कथनानुसार अपने मनसे एक तुच्छ ग्रामीण स्त्री सरीखे रूठ कर चली नहीं गईं। जब शंकरजी ने देखा कि सतीजी किसी तरह रहने को

राजी नहीं होतीं हैं और बिना आज्ञा पाये जायेंगी भी नहीं जैसा कि सती का निश्चय था कि—

'जो महेश मोहिं आयसु देहीं । कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं ।।'

अतः सतीके आदर्श को निर्दोष रखने के लिये लिखा है कि—

'कहि देखा हर यत्न बहु रहै न दच्छ कुमारि ।
दिये मुख्य गण संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ।।

'तुम माया भगवान शिव'' का तात्पर्य यह है कि तुम भगवान शिव की माया (शक्ति) हो। कुछ आद्यामाया से यहाँ तात्पर्य नहीं है क्योंकि शास्त्रों से सिद्ध है कि शिवादि श्रीराम जी की विभूति हैं मानस में तो—

'उपजहिं जासु अंश ते नाना । शंभु विरंचि विष्णु भगवाना ।।'

कई जगह है ही अन्य ग्रंथों में भी है देखिये महर्षि पराशर जी ने वि० पु० में शिवजी का जनार्दन की विभूति लिखा है कि—

रुद्रः कालोऽन्तकाद्याश्च समस्ताश्चैव जन्तवः ।
चतुर्धाप्रलये ह्येता जनार्दन विभूतयः ।।

जब शिवजी ही विभूति हैं तो सती आदि की कौन गणना।

शायद शिवजी के साथ में कहे गये भगवान शब्द के अर्थ को ठीक ठीक न जानने के कारण भगवान के वैभव में पाण्डेय जी भूल गये हैं। इसीलिये मुझे प्रसंगान्तर हो जाने पर भी भग और भगवान् शब्द का अर्थ करना आवश्यक मालूम देता है।

भगवान् शब्द जीव विशेष और परमात्मा के लिए शास्त्रों में व्यवहृत हुआ है। जिसका कारण यह है कि भग शब्दसे ऐश्वर्योंका ग्रहण किया जाता है। यह न भूलना चाहिए

कि जितने शब्द हैं उन सब में साधारण और असाधारण दो भेद होते हैं। जो शब्द किसी एक के लिये ही प्रयुक्त किए जा सके उसमें किसी दूसरे का समावेश न हो उसे असाधारण कहते हैं और जिस शब्द का प्रयोग बहुतों के लिए किया जा सके उसे साधारण शब्द कहते हैं। और कोई शब्द ऐसे होते हैं जो अर्थान्तर से साधारण और असाधारण दोनों प्रकार से व्यवहृत किये जा सकते हैं। इसी कोटि में 'भग' शब्द है। अतः असाधारण 'भग' (ऐश्वर्य) केवल एकमात्र परमात्मा में ही व्यवहृत हो सकता है और साधारण 'भग' शब्द का व्यवहार जीव विशेष जैसे कि देवताओं और महर्षियों आदि में करके उन्हें भी शास्त्रों में भगवान शब्द से विशेषित किया गया है। असाधारण भग ये हैं—

"ज्ञान शक्ति वलैश्वर्य तेजो वीर्याण्यशेषतः।
भगवच्छब्द बाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभि ॥"
"पोषणं भरणाधारं शरेण्यं सर्व व्यापकम्।
कारुण्यं षड्भिः पूर्णो रामस्तु भगवान्स्वयम् ॥"

इन श्लोकों में कहे हुए ऐश्वर्य (भग) केवल परमात्मा के ही गुण हैं अतएव ये असाधारण भग हुये। साधारण भग निम्नलिखित हैं—

'ऐश्वर्यस्य च वीर्यस्य यशसः श्रिय एव च।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥' वि० पु०॥
'उत्पत्तिं प्रलयं चैव जीवानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥'

इन श्लोकों में कही हुई बातों के प्राप्त एवं ज्ञाताओं को

भी भगवान् कहा जाता है और ये सब भग साधनों से प्राप्त होते हैं एवं ज्योतिष तथा दर्शनों से भी जाने जाते हैं। एतदर्थ शास्त्रज्ञों, लौकिक (ऐहिक) ऐश्वर्य शालियों तथा देवताओं और ऋषियों को भी भगवान शब्द से बिशेषिता किया जाता है। इन श्लोकों में वर्णित भग ईश्वर तथा जीव विशेष में भी रहते हैं इसी से ये साधारण भग हुए। इसी साधारण भग से संपन्न होने के कारण ही कहीं कहीं ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवता तथा नारद, बशिष्ठादि ऋषिगण को भी अभियुक्तों ने भगवान् शब्द से विशेषित किया है। सतीमोह को ऐतिहासिक अनौचित्य सिद्ध करने के लिये आपने जो दो युक्तियाँ ढूँढ़ निकाली हैं वे दोनों लचर एवं बालभाषित वत् हैं—

पहिली युक्ति तो यह कि सत्ययुग के दक्ष की लड़की सती त्रेतान्त में कैसे जीवित रह सकीं? परन्तु क्या आप बतलायेंगे कि सती की अन्य ऊनसठ बहिनें आज तक कैसे (क्यों) जीवित हैं? सती की बड़ी बहिन अरुन्धती जी त्रेतान्त में अयोध्या में ही नहीं थीं क्या! धर्म की पत्नियाँ क्या आज नहीं जीवित हैं? क्या चन्द्रमा की रोहिणी, चित्राआदि पत्नियाँ आज नहीं हैं। सती की बात क्या-शूर्पणखा तो लग-भग पांच करोड़ वर्ष से भी अधिक आयु में श्रीराम लक्ष्मण जी से ब्याह करने गई थीं। यथा—

अनेक युगजीविन्यास्त्रेता यस्यास्त्रयोदशी।
सा वीरकण्ठं वत्सं वृषस्यन्ती न लज्जिता॥

(महाकवि भवभूति का महावीर चरितं ना०५।११)

और यही आयु रावण की भी थी—

चतुर्युगानि राजात्र त्रयोदश स रावणः ॥
(वायुपु० ७० । ४५)

स्कंद पुराण में हिसाब लगाकर ५६१६०००० वर्ष रावण की आयु का मान बताया गया है—

पंचकोटिस्तु वर्षाणां संख्यातासंख्यया प्रिये ।
नियुतान्येकषष्ठिं च संख्यावद्भिरुदाहृतम् ॥२६॥
षष्ठिं चैव सहस्त्राणि वर्षाणां स हि रावण. ।
देवतानामृषीणां च घोरं कृत्वा प्रजागरम् ॥३०॥
(स्कं० पु० ७ प्रभासखंड अध्याय २० वायु०पु० ७०।४६,४७)

जब सती की बहनें आज भी जीवित मानी जाती हैं। सूर्पणखा रावणादि कई करोड़ वर्ष तक जवान बने थे तब सती में ही ऐसा कौन सा पाप आपने देखा जिसके कारण उनका सतयुग में ही बुढ़ाकर मरजाना अनिवार्य मानलिया। चौबीसवें त्रेता के अन्त में रामावतार के बाद जो व्यासजी तथा गोस्वामीजी आदि ने सती का मरना लिखा वह उनके वार्द्धक्य के कारण नहीं किन्तु स्वेच्छा से योगाग्नि के द्वारा। अतः इसमें तो सिवाय आप ऐसे कमलाकर जी के अन्य कोई भी अनुचित नहीं कह सकता।

दूसरा अनौचित्य आप तारक और कार्तिकेय के सतयुग के युद्ध को लेकर बताते हैं। परन्तु आपने यह नहीं बतलाया किस सत्ययुग में तारक-कार्तिक युद्ध हुआ था ? आपने कोई इतिहासपुराणादि तो शायद कभी देखा ही नहीं जीवन भर कल्पित झूँठे उपन्यास गल्प कहानी आदि ही पढ़ते लिखते रहे। तभी आपको उपन्यासों की तरह कल्पना और

अनौचित्य ही सुझाई पड़ता है। इतिहासपुराणादि को न देखने से ही आप समझ बैठे हैं कि श्रीरामावतारके बाद अभी सत्य-युग आया ही नहीं। किन्तु अब मैं पता बता देता हूँ कि पंचम वेद महाभारत के खिल (अन्तिम) पर्व हरिवंश पर्व में देखलें, यदि संस्कृत न समझ सकें तो उसकी हिन्दी टीका भी छपी होगी उसी से देखलें कि वहाँ कितने सुस्पष्ट शब्दों में लिखा है कि वैवस्वत मनु के चौबीसवें त्रेता में श्रीरामावतार हुआ था यथा— चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्र पुरः सरः।

राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥

(हरि० १।१।१२१)

पुराणों में भी ऐसा ही निर्णय यत्र-तत्र है। कुछ देखिये—

त्रेता युगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् ।

रामं दाशरथिं प्राप्य रावणः क्षयमीयिताम् ॥

(स्कं० पु० ७।२०।३१, वा० पु० ७०।४८)

अस्मिन् बाराहकल्पे तु वर्तमाने मनस्विनि।

(स्कं० पु० ७।१६।५२)

चतुर्विंशे युगे रामो बशिष्ठेन पुरोधसा।

सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥

(वायु०पु० ६८।६२, स्कं० पु० ७।१६।७५।७६)

पचीसवें सत्ययुग में तारक और कार्तिकेय का जन्म होना संगत जान पड़ता है। आज बर्तमान समय में वैवस्वत मनु की अट्ठासवीं चतुर्युगी बीत रही है। अतः रामावतार केबाद चार सत्ययुगका बीत चुकना महर्षि व्यासजी मानतेहैं। क्या इन चार सत्युगों में से किसी सत्ययुग में तारक और कार्तिकेय की उत्पत्ति नहीं हो सकती ?

इस तथ्य को इस तरह समझिये कि 'श्रीरामावतार कालिक स्थूल लीला जब समाप्ति हो गई और रघुनाथजी सपरिवार अन्तर्धान हो गये उसके बाद शंकर जी ने सतासी हजार वर्ष की समाधि लगा दी। (इसका स्पष्टीकरण अगले समाधान में पढ़िए।) उसके बाद सतीने दक्षयज्ञमें योगाग्नि में अपना शरीर पात किया। जिस दिन सती ने शरीर का परित्याग किया उसीदिन तो पार्वती शरीर पा नहीं गई होंगी। कुछ काल के बाद ही तो पार्वती का जन्म हुआ होगा। और देवताओं के कुछ दिन में मनुष्यों के दो युग बीत जाना अनिवार्य है। इस तरह पार्वती का जन्म पचीसवें सत्ययुग में पहुंच जाता है। और पचीसवें सत्ययुग में तारकासुर और कार्तिकेय षण्मुख का जन्म कर्म आदि होने में भी सतीमोह विषयिक इतिहास संबंधी किसी तरह का अनौचित्य सिद्ध नहीं हो सकता।

सतीमोह को कल्पित सिद्ध करने के लिए आपकी अन्तिम युक्ति यह है कि भागवत में वर्णित कृष्णावतार कालिक ब्रह्मा मोह वाली कथा का ही अनुकरण रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने सतीमोह के रूप में किया है। और उसका कारण बताया है कि वहाँ बलदेवजी ने जैसे ब्रह्मा का छल नहीं जाना वैसे यहाँ लक्ष्मणजी ने सती का छल नहीं जाना। इस पर प्रमाण दिया है कि—

'लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित हृदय भ्रम भये विशेषा॥

मैं फिर पांडेयजी से अनुरोध करूँगा कि आप किसी योग्य विद्वान् को गुरू बनाकर उनसे श्रीमद्भागवत और मानस

का अध्ययन कीजिये तब यथार्थता मालूम होगी। भागवत में स्पष्ट ही वर्णित है कि जिस दिन ब्रह्मा ने बाल बत्सों का हरण किया था उस दिन किसी कारण बश बलदेवजी. भगवान् श्री कृष्ण के साथ बत्स चारण को गये ही नहीं थे। जब साथ ही नहीं थे तो जानते कैसे ? और सालभर बाद जब गायों की चेष्टा देखा तो अपनी ज्ञान दृष्टि से जान भी गये कि ये सब हमारे स्वामी श्री कृष्ण के प्रति रूप हैं। यथा-

प्रायो मायास्तु में भर्तुर्नाना मेऽपि विमोहिनी ॥

भाग० १० । १३ । ३७

इति संचिन्त्यदाशार्हो बत्सान्सवयसानपि ।

सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

और लक्ष्मणजी तो रामजी के साथ ही थे तथा 'लछिमन दीख उमाकृत वेषा।' सती का कृत्रिम वेष देख लिये (पहिचान लिये) यदि पहिचान न लिये होते तो अर्द्धाली में 'उमाकृत वेषा न कह कर 'लछिमन दीख मार्ग महँ सीता' पाठ होता या इसी तरह का कुछ दूसरा पाठ होता । दूसरी बात यदि उन्हें सीता ही जानते तो उन्हें चकित हृदय एवं बिशेष भ्रमित होने का कारण न था परन्तु लक्ष्मण के लिये तो कहा नहीं गया है कि "चकित हृदय भ्रम भयेउ बिशेषा" क्योंकि लक्ष्मणजी के लिये तो स्पष्ट शब्दोंमें आगे की अर्द्धाली में कहा गया है कि 'प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा।' अतः 'चकित हृदय भ्रम भयेउ विशेषा' तो सती के लिये है कि सती का हृदय चकित है। कारण कि सती को विशेष भ्रम होगया है। और भ्रम के कारण चकित होना स्वाभाविक है यथा—

भ्रमते चकित राम मोहि देखा।

और सती को विशेष (भारी) भ्रम है यथा—

"भ्रम वश वेश सीय कर लीन्हा।"

"जैसे जाइ मोह भ्रम भारी॥" इत्यादि

सतीमोह के जोड़ की कथा भागवत में ब्रह्मा मोह है इसीलिये पाण्डेय जी ने सतीमोह को कल्पित एवं भागवत की अनुकृति मान लिया है और इसीलिए पाण्डेय जी की दृष्टि में सारा रामचरित्र ही कल्पित हो जा सकता है कारण कि राम और कृष्ण में तात्विक भेद कुछ है ही नहीं दोनों में स्वरूपतः अभेदहै। इसलिये दोनों अवतारों की लीलाओंमें साम्यता आ जाना स्वाभाविक है। दोनों अवतारों की लीलाओं के साम्यत्व का बहुत विस्तृत वर्णन आनन्द रामायण के राज्यकाण्ड के तृतीयसर्ग में किया हुआ है उसी मेंसे कुछलीला साम्य देखिये-

श्री राम लीला	श्री कृष्ण लीला
१-(स्त्री) ताड़का बध	पूतना वध
२-ताड़का के परिवार मारीच सुबाहु आदि का बध	पूतना के परिवार बकासुरादि का बध
३-अहल्या (जड़) शिला उद्धार	यमलार्जुन (जड़) वृक्ष उद्धार
४-सेतु बन्धन (अलौकिक कार्य)	गोवर्धनधारण(अलौकिककार्य
५-परशुराम का मानमर्दन	इन्द्र का मानमर्दन
६-सतीमोह	ब्रह्मा मोह
७-धनुष भंग जनकपुर	धनुष भंग मथुरा कंस के यहाँ
८-अछूतोद्धार केवट शबरीआदि	आभीर-विदुरानी वा श्वपच
९-जनकपुर की रंगभूमि में नव रस मय भासना	कंस की रंगभूमि में नवरस मय भासना

१०-दीनमैत्री सुग्रीवविभीषणादि सुदामा, राज्यच्युत अर्जुनादि
११-बन्दीमोचन रावण के यहाँ जरासंध के यहाँ से राजागण
से देवतागण

१२-माता को विराट रूप का मृतिका भक्षण के बहाने
दर्शन (पूजा के समय)

१३-उद्धत पशुबालि बध कुबलयापीड़ बध

१४-उद्धत बलवान रावण शिशुपाल कंसादि बध
खरदूषणादि बध

१५-उपदेश रणमें विभीषण को धर्मरथ अर्जुन को गीता

१६-कई बार अनेक रूप बना लेना—इत्यादि।

तो क्या पाण्डेय जी के कथनानुसार सारे रामचरित्र को भागवत का अनुकरण एवं कल्पित मान लेना चाहिये।

आशा है कि कमलाकर जी को एवं दुर्भाग्य से सती-सम्बन्धी कमलाकर में फँसे हुये अन्य सज्जनों को भी इस पंक प्रक्षालन से इतना तो अवश्य स्पष्ट हो जावेगा कि यह सतीमोह की कथा गोस्वामी तुलसीदास जी की गढ़ी हुई गढ़ंत नहीं है। इस कथा का मूल स्रोत एक ही नहीं कई ग्रन्थ हैं।

अन्त में पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि एक तो परम पूज्य गोस्वामी जी और उनके वेद स्वरूप ग्रन्थ रत्न रामचरित्र मानस पर अनर्गल आक्षेप देखकर 'अतथ्यं वा तथ्यं वा हरति महिमानं जनरवः।' की बात का स्मरण हो जाने से हार्दिक दुःख हो जाने के कारण कुछ कठोर शब्दों का प्रयोग हो गया

हो तो उसे महानुभाव लोग क्षमा करेंगे क्योंकि जरा कड़े हाथों से ही सूखे सड़े पंक के प्रक्षालन की आवश्यकता रहती है।

दूसरे यह कि "सर्वं सर्वे न जानन्ति" के अनुसार मैं भी एक अल्पज्ञ जीव होने के कारण सब कुछ नहीं जान सकता। और 'अनंतशास्त्रम्०' एवं 'रामायण शतकोटि अपारा' है। सबका ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। हाँ इस विषय में जो कुछ भी श्री किशोरी जू की कृपा प्रेरणा से जान सका हूँ उसी से श्री पाण्डेय जी के प्रत्येक आक्षेपों का समाधान सप्रमाण करने की चेष्टा किया है। आशा है कि पाठकगण भी समझने की कोशिश करेंगे कि सतीमोह की कल्पना गोस्वामी जी की नहीं है और वे दुराग्रही नहीं हैं। पुराणों में शिवपुराण में श्री शिवाशिव का ही उत्कर्ष वर्णित है परन्तु शिवपुराण की रुद्र संहिता में भी तीन अध्यायों में विस्तार पूर्वक सतीमोह का वर्णन है। (मानसमणि १।१२)

* शंका १५ *

सीता हरण के बाद शंकरजी ने कुम्भज ऋषि के पास से जाते समय श्रीरामचन्द्रजी को गुप्त रूप से प्रणाम किया था। इस पर सती को भ्रम हुआ और वे परीक्षा रूप से सीता का रूप धारण की, जिसके लिए श्री शकर भगवान यह प्रण किए कि (एहि तन सती भेट अब नाहीं)"..........। यह वर्णन सीता हरण से रावण मरण तक का ही है और फिर रावण मरण के बाद शंकर जी श्रीरामचन्द्र की प्रार्थना भी (मामभिरक्षय रघुकुल नायक......) किये हैं। अब शंका यह है कि 'सीता हरण से रावण मरण तक ही बीते सम्बत्

सहस सत्तासी। तजी समाधि शम्भु अविनाशी'॥ क्योंकर सम्भव है। (पं० श्रीरामसूरत मिश्र बी० टी० सी०)

* समाधान *

राजाधिराजाभिश्चाप्यलंकृतां, महामुनीन्द्रैरमरैश्चसेविताम्।
महाबलैर्नागचयैः प्रणादितां, नमामि तां रामपुरीं मनोरमाम्॥

इसका समाधान यद्यपि कुछ लोग यह कहकर देते हैं कि शंकरजी ने उस समय अपना दो रूप बना लिया था। एक से समाधि में थे और दूसरे से भगवल्लीला-दर्शन का आनंद लेते थे। यह समाधान ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) के प्रसिद्ध देवताधिकरण के अनुसार दुर्जनतोषन्याय की रीति से किसी तरह संघटित भी हो सकता है। परन्तु दो कारणों से ऐसा समाधान करना मुझे समुचित नहीं समझ पड़ता।

पहला कारण यह कि ऐसी द्रविण प्राणायामात्मक कल्पना तो तब करनी चाहिये जबकि उसका समाधान श्री-गोस्वामी पाद के शब्दों में न मिलै—

तहँ पुनि शंभु समुझि प्रणआपन। बैठे बटतर करि कमलासन॥

इस चौपाई में आये हुये 'पुनि' शब्द पर बिचार करने से उपर्युक्त प्रकार की शंका उठ ही नहीं सकती। वह इस तरह कि शिवजी सीताहरण के बाद बियोगी श्रीरामजी का दर्शन करके दण्डकारण्य से कैलाश चले गये और सती जी को कैलाश में छोड़कर श्रीरामजी की लीला देखने के लिये तत्त-त्स्थानों पर चले जाया करते थे। यह इस तरह मालूम पड़ जाता है कि श्रीशिवजी का प्रत्यक्ष रूप से जब कहीं जाना मिलता है तो सपत्नीक ही अकेले नहीं, परन्तु जब से सती से

संबंधविच्छेद कर दिया पत्नी भाव त्याग दिया तब से सती जी को कैलाश में छोड़कर अकेले बिचरण किया करते थे, तभी तो रावणमरण के बाद लंका में और पश्चात् श्रीराम-राज्याभिषेक के समय श्रीअयोध्याजी में शंकर जी का अकेले ही जाना पाया जाता है। श्रीराम जन्मोत्सव में भी सपत्नीक नहीं गये थे पर वहाँ अपनी असलीमूर्ति छिपाकर मनुष्य रूप में श्री कागराज के साथ गये थे ऐसा वे स्वयं ही बतलाते हैं कि-

काकभुशुण्डि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानै नहिं कोऊ॥

और सती-त्याग के पूर्व जब श्रीरामविवाह में जनकपुर में श्रीशंकरजी गये थे तो उस समय सपत्नीक ही (प्रत्यक्ष देव समाज के साथ) जाना मिलता है—

रामरूप नखशिख सुभग बारहिंबार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥

यहाँ उमा नाम दक्षकन्या सती का है। यथा शि० पु०

तदोमेति नाम चक्रे तस्या दक्षस्तदाज्ञया॥ २।२।१४।४६॥

महर्षि अगस्त्यजी के यहाँ से तो सपत्नीक लौटते समय का तो यह संबंध बिच्छेद वाला सारा काण्ड ही है जिस नोव पर शंका की इमारत खड़ी की गई है। अस्तु—

सती परित्याग के बाद सम्पूर्ण बन एवं राजलीला देखने अकेले ही जाया करते थे—

'बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥'
'हमहूँ उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रण रंगा॥'
'रहे बिरंचिशंभु मुनिज्ञानी। जिन जिन प्रभु महिमा कछु जानी'
तासु तेज समान प्रभु आनन। हर्षे देखि शंभु चतुरानन॥'

'देखि सुअवसर प्रभु पहिं आये शंभु सुजान।'

'करि बिनती जब शंभु सिधाये।'

'बैनतेय सुनु शंभु तब आये जहँ रघुबीर॥'

इत्यादि स्थलों पर स्पष्ट है। संबंध बिच्छेद के कारण उपर्युक्त स्थलों पर कहीं भी शिवजी का सपत्नीक जाना नहीं वर्णित है। उस समय तो सतीजी कैलाश में ही रहतीं थीं। इस बात को स्वयं शिवजी ने ही गरुड़मोह प्रसंग को बर्णन करते हुए स्वीकार किया है कि—

'परमातुर बिहंगपति तब आयेउ मम पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह उमा रहिउ कैलास॥'

अतः 'पुनि' शब्द से ध्वनित होता है कि उस समय श्री-रामावतार कालिक सम्पूर्ण लीला देखने के बाद ही शंकरजी ने सतासी हजार बर्ष की अखण्ड समाधि लगाया, चरित्र काल तक नहीं।

यह भी एक बिचारणीय बात है कि जब भगवच्चरित्र के कहने और सुनने के लिये समाधि-ध्यान छोड़ दिया जाता है—

'मगन ध्यानरस दण्ड युग पुनि मन बाहर कीन्ह।
रघुपति चरित महेश तब हर्षित बर्णै लीन्ह॥'

'सुनि गुणगान समाधिबिसारी। सादरसुनहिं परम अधिकारी'

'जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान॥'

तब साक्षात् भगवच्चरित्र के होते समय उसको देखना छोड़कर—

'वैष्णवानां यथा शम्भुः।' (भाग० १२।१३।१६)

भगवान शंकर सरीखे परम वैष्णव का समाधि में बैठ जाना कब संभव हो सकता है।

दूसरा कारण यह कि यदि भगवान शंकर अपना दो रूप बनाये होते तो लीला देखकर उनका कैलाश जाना न कहा जाता अपितु वहीं अन्तर्धान हो जाना कहा जाता, परन्तु कैलाश जाना स्पष्ट ही कहा गया है कि—

'बरणि उमापति रामगुण हर्षि गयउ कैलाश ॥'

अतः गोस्वामी जी का यहाँ 'पुनि' शब्द रखना सहेतुक है, पाद पूर्त्यर्थ नहीं। इसीलिये शंका उठाना ही अविचारित है।

ॐ शंका १६ ॐ

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना

इससे ज्ञात होता है पार्बतीजी शिवजी को आराध्य मानकर तप करती हैं। फिर,

देखि उमहिं तप खीन सरीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गंभीरा॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलकगात गिरिजा हरषानी

इसमें पहली अर्धाली से मालूम होता है कि ब्रह्म जो सबसे परे हैं उनके द्वारा आकाश बाणी हुई, दूसरी अर्धाली में मालूम होता है कि ब्रह्माजी आकाश बाणी किये। बरदान तो वही देते हैं जिनकी आराधना की जाती है। फिर शिवजी के पहले ब्रह्माजी क्यों बर दिये ? (दीनबन्धु पाण्डेय)

ॐ समाधान ॐ

कपालखड्गाङ्गधरं कृपालुं, गौर्य्याश्रितं श्रीसीतेशदासम्।
कुन्देन्दुकर्पूरनिभं सुकान्तिं बन्दे महेशं सकलानुभूत्यै॥

पौराणिक आख्यानों से पता चलता है कि बड़े बड़े तप का फल प्रायः चतुर्मुख ब्रह्मा ही दिया करते हैं। हाँ यदि वह तपस्वी ब्रह्मा के दिये हुये बरदान को नहीं स्वीकार करता

किंवा ब्रह्मा से बरदान न चाहकर किसी देव विशेष अथवा परब्रह्म से बर चाहे तब वह देव विशेष अथवा परब्रह्म आकर बरदान देता है। परन्तु कुछ परीक्षा लेकर ही। महाराज मनु ने जब चतुर्मुख ब्रह्मा का दिया बरदान नहीं चाहा तभी तो क्रमशः हरिहर एवं परब्रह्म को आना पड़ा—

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भांति लोभाये।

और चतुर्मुख ब्रह्मा किंवा कोई भी देवता बरदान उसी को देता है जिसको कि अपने से न्यून समझता है। चतुर्मुख ब्रह्माजी किसी तरह भी पार्वती जी को अपने से न्यून नहीं समझते और न कोई देवता ही अपितु सभी कोई श्रीपार्वतीजी को प्रणाम करते हैं। प्रणाम अपने से बड़े को ही किया जाता है न्यून को नहीं—

जगदम्बिका जानि भवभामा। सुरन मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥

अतः यहाँ 'बिधि' से चतुर्मुख ब्रह्मा का ग्रहण नहीं हो सकता प्रत्युत बिधि' से अनन्त ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म का ही ग्रहण होता है। जैसे—

'तौ देइहि विधि हमहिं सजाई।'
'सो फल मोंहि बिधाता दीन्हा।'
'अब विधि अस बूझिय नहि तोहीं।'

और किसी को सजा या किसी प्रकार का भी कर्म फल चतुर्मुख ब्रह्मा नहीं दिया करते। वह शुभा-शुभ कर्मफल प्रदायक तो परब्रह्म ही हैं—

सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देह फल हृदय बिचारी।

'कालकर्मगति अगति जीवकी-सब हरि हाथ तुम्हारे।' (वि.प.)
कालरूप तिन कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता॥

और आकाश वाणी की यह सूचना भी—

अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा सन्तत सुचि जानी॥

भी परब्रह्म की ओर ही संकेत कर रही है। वैसे तो बिधि शब्द चतुर्मुख ब्रह्मा के लिये ही रूढ़ि है परन्तु चतुर्मुख ब्रह्मा आकाश बाणी नहीं किया करते अपितु प्रत्यक्ष होकर बरदान दिया करते हैं। हाँ अन्य देवता लोग अन्तरिक्ष में स्थित होकर किंवा प्रत्यक्ष होकर भी बरदान शापादि दिया करते हैं ब्रह्मा जी नहीं। ऐसा ही प्रमाण पुराणादिकों में मिलने से पार्बती के तप में आकाशबाणी परब्रह्म कृत ही है और उसी बरदान के कारण ही परब्रह्म ने शिवजी से जाकर पार्बती जी की पुरुषकारिता किया कि—

अब बिनती मम सुनहु सिव, जो मोपर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु शैलजहिं, यह मोंहि माँगे देहु॥
(मा० म० १०।४)

* शंका १७ *

'मातु पिता गुरु प्रभुकै बानी। बिनहिं बिचार करिय शुभ जानी॥

यहाँ शिवजी ने प्रथम माता तब पिता और तब गुरु का बर्णन किया है। परन्तु इसी ग्रन्थ में श्रीभरत और लक्ष्मणजी ने प्रथम गुरु तब माता और तब पिता का बर्णन किया है—

'गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।' श्रीभरत बाक्य और-
'गुरु पितु मातु न जानौं काहू।' श्री लक्ष्मण बाक्य।

ऐसा व्यतिक्रम क्यों किया गया? कबिता के अनुरोध

'बन सागर गिरि नदी तलावा।' आदि का
'कामरूप सुन्दर तनुधारी।' बनकर
'सहित समाज सहित बरनारी।' आना सर्वथा संभव हो सकता है और वे लोग जो—

गये सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥

यह सर्वथा सत्य है। (मानसमणि ८। ११)

* शंका २० *

(क) रामचरित मानस के पढ़ने से बिदित होता है कि शिवजी की बारात में प्रथम ज्यौनार तब बाद में भाँवरी हुई पर रामचन्द्रजी के बिबाह में प्रथम भाँवरि बाद में ज्यौनार हुआ। ऐसा बिपरीत क्यों!

(ख) शिवजीके बिवाह में केवल पक्की ही ज्यौंनार हुई, पर रामचन्द्र के बिबाह में कच्ची व पक्की दोनों ज्यौंनार हुई ऐसा क्यों? (मोहनलाल कोली, झींझक)

* समाधान *

सतिय ससुत रामहिं जपत, धरत रामशिशु ध्यान।
कहुँ काशी कैलाश कहुं, मुनिथल कबहुं मशान॥

(क) शिवजी की बारात देवताओं की थी वहाँ जीमने वाले सब देवगण ही थे इसलिये वहाँ देवताओं की रीति बर्ती गई अर्थात् प्रथम ज्यवनार हो चुका तब बाद में भाँवरी पड़ी, बिवाह हुआ, और रामजी के बिबाह में दशरथजी की बारात मनुष्यों की थी यहाँ जीमने वाले सब मनुष्य ही थे, इसलिये यहाँ मनुष्यों की रीति बर्ती गई अर्थात प्रथम भाँवरी पड़ गई, बिवाह हो गया तब बाद में ज्यौनार हुआ इसका कारण यहहै

कि भारत में उच्चवर्ण के कुलीन मनुष्य सब किसी के यहाँ ज्यौनार, भात नहीं खाते जिससे पारिवारिक सम्बन्ध रहता है उसीके यहाँ सूपोदन–दालभात का भोजन करते हैं। विवाह हो जाने पर पारिवारिक सम्बन्ध हो जाता है। यह ज्यौनार-भात भोजन की बात दैशिक एवं कौलिक प्रथा के ऊपर निर्भर रहती है। मैंने एकाध ऐसा भी सम्पन्न गृहस्थ परिवार देखा है कि जो अपनी पाणिगृहीता पत्नी, अपनी माता, बहिन बेटी आदि घर की स्त्रियों का स्पर्श किया भोजन नहीं करते चाहे रात दिन स्त्रियों का थूक चाटते रहते हों पर अपने एवं स्त्रियों-समस्त परिवार के लिये पुरुष वर्ग ही नित्य रसोई बनाते हैं। यह दम्भ ढोंग भी शायद कौलिकप्रथा-कुलाचार ही है। अस्तु मनुष्यों के लिए धर्म शास्त्रों की आज्ञा है कि—

व्रतबन्धे, बिबाहे च चतुर्थ्यां, सहभोजने।
व्रते, दाने, मखे, होमे, पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ स्मृति संग्रहे

इस धर्मशास्त्रीय आज्ञा के अनुसार कन्यादान के समय कन्या की माता अपने पति के दाहिने भाग में बैठती है। स्मरण रहे मनुष्यों के धर्मशास्त्र का शासन देवताओं के ऊपर नहीं चलता। हाँ तो देवताओं में कन्यादान के समय कन्या की माता अपने पतिके बाम भाग में बैठती है और मनुष्यों में कन्या की माता अपने पति के दाहिनी ओर बैठकर कन्यादान करती है। पार्बती शिव देवता हैं मनुष्य नहीं इसी से कन्यादान के समय पार्बतीजी की माता मैना अपने पति हिमाचल के बायें भाग में बैठीं। जानकीजी अयोनिजा देबी हैं मनुष्य नहीं इसीसे जानकीजी की माता सुनैना भी कन्यादान

के समय अपने पति सीरध्वज-जनक के बायीं बगल बैठीं।—
जनक-बाम दिशि सोह सुनैना। हिमगिरि सङ्ग बनी जनु मैना॥

(ख) श्रीरामजी के विवाह में—

सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वादु पुनीत।
छनमहँ सब कहँ परसिगे चतुर सुआर बिनीत॥

भांति अनेक परे पकवाने। सुधासरिस नहिं जाहिं बखाने॥
परसन लगे सुआर सुजाना। व्यंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भांति भोजन बिधि गाई। एक-एकबिधि बरनि न जाई॥
छरस रुचिर व्यंजन बहु जाती। एक-एक रस अगनित भांती॥

कहकर थोड़े बिस्तार से ज्यौनार की बात कही गई है और श्री शिवजी के ब्याह में—

भांति अनेक भई ज्यौनारा। सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा॥
सो ज्यौनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहि मातु भवानी

कहकर संक्षेप में वही बात जना दिया। वैवाहिक ज्यौनार में सूप-दाल प्रधान बस्तु है। भाव उसका यह है कि विवाह, दोहृदयों दोकुटुम्बियों को एक में सानने-मिलाने-ओतप्रोत करने के लिये होता है। इसीलिये बरातियों को भी एक में सानकर-मिला करके ही खाने वाला पदार्थ दालभात प्रथम परोसा जाता है, अपने हाथ से सस्नेह सघृत दालभात एकमें मिलाकर बराती पहिले खाते हैं रोटी, पूड़ी आदि तोड़ करखाये जानेवाले पकान व्यंजन प्रथम नहींखायेजातेहैं। कहीं कहीं लोकमें 'भात बिना भलमन्सात नाहीं।' तो प्रसिद्धही है।

दालभात जब मिलत है मिलत गोत से गोत।
पुड़ी कचौड़ी में प्रथम तोराफोरी होत॥ (विनीतजी)

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ कठोप० १।२।२५

एक तरह से प्रधान भोजन भातदाल आदि ही बताया है। हिन्दी संसार के एक प्रतिष्ठित समयनोचक (समालोचक) ने तो ऐसा फतवा दिया है कि बाबा तुलसीदासजी वास्तव में वेदों के पंडित नहीं थे इसीसे अपनी हर बात को वेदोक्त बतला दिया करते थे, जो वेदोंमें नहीं है. वेदों से उनका मतलब मंत्र-संहिता भाग से ही है, उनके कई उद्धरणों में एक उद्धरण भोजन सम्बन्धी भी है--

'उपरोहित ज्यवनार बनाई। छरस चारि बिधि जस श्रुतिगाई'॥
"चारि भांति भोजन श्रुति गाई॥"

मैं यहां केवल प्रचलित ऋग्वेद से ही एकाध श्रुति उद्धृत कर देता हूं आवश्यकता पड़ने पर और भी अनेक श्रुतियाँ मन्त्र भाग से ही उद्धृत की जा सकती हैं।

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥
(ऋग्वेद १।११२।३)

धनावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥
(ऋ० ३। ५२। १)

स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथा कामं निपद्यते॥ ऋ० १०।१४६।५
आञ्जनगंधिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्॥ ऋ० १०।१४६।६

आज के हिन्दी संसार में समयनोचकगण भी एक विचित्र जीव हैं जो आलोचना नहीं नहीं समालोचना के नाम से अपनी अनभिज्ञता अपना अज्ञान प्रातःस्मरणीय

गोस्वामीपाद तक परभी आरोपित करते हुये लज्जित नहींहोते।

सूप दाल कच्ची रसोई में मानी जाती है और यही सूप-दाल सूपशास्त्र एवं सूपोदन के रूपमें ही शिव बिबाह के ज्यौनार और राम बिबाह के ज्यौनार में दोनों स्थानों पर प्रथम बर्णित है, तब 'रामजी की बारात को कच्ची पक्की दोनों तरह की रसोई खाने को मिली परन्तु शिवजी की बारात को कच्ची ज्यौनार खानेको नहीं मिली केवल पक्की रसोई ही मिली' ऐसा कहना सरासर गलत है। (मा० म० १३।२७)

* शंका २१ *

श्री पाद् गोस्वामीजी ने शिवजी की बारात में ग्यारह कमल क्यों खिलाये हैं ? क्या रहस्य है ? (मोहनलाल कोली

* समाधान *

कमलपानि कमलासना कमलकान्ति कमनीय।
मोहिं अबोध 'कुमार' गुनि क्षमिहिं दोष सब सीय॥

(ग) शिवजी की बारात कोई नदी तालाब आदि जलाशय नहीं थी और न उसका मानस में कहीं नदीतालाब आदि जलाशय के रूप में ही रूपक बांधा गया है। प्रत्युत—

उमामहेश बिबाह बराती। ते जलचर अगणित बहु भांती॥

के रूप में कीर्ति सयू के सांगरूपक का एक अंग कहा गया है। सृष्टि नियमानुसार कमल के पैदा करने वाले चर्तुमुख ब्रह्मा हैं और खिलाने-प्रस्फुटित करने वाले सूर्य हैं। श्रीगोस्वामीजी न सूर्य ही हैं न ब्रह्मा ही, और न गोस्वामीजी ने स्वयं अपने को कहीं ब्रह्मा या सूर्य किंवा ब्रह्मा अथवा सूर्य के समान ही माना है। तब यह कहना कि गोस्वामीजीने शिवज

की बारात में ग्यारह कमल खिलाया है, सरासर अपनी अन-भिज्ञताका द्योतक अथच गोस्वामीजी पर दोषारोपण करना है।

कहौं सो मति अनुहारि अब उमाशंभु संबाद।

बालकाण्ड दोहा ४७ से लेकर—

शंभुचरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा॥

दोहा १०३ तक शंकर चरित्र है। इन ५६ दोहों के भीतर केवल आठ बार प्रसंगतः कमल की चरचा है। जिनमें एक बार तो यथार्थ कमल की चर्चा है, एक बार मैना के नेत्र को कमल कहा है, एक बार रघुकुल को कमल कहा है और पाँच बार शिवजी के चरण को कमल कहा गया है।

एक बार यथार्थ कमल--

बिकसे सरनि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।

एक बार मैना का नेत्र कमल—

अधिक सनेह गोद बैठारी। श्याम सरोज नयन भरे बारी॥२॥

एक बार रघुबंश को कमल—

एक बार आवत शिवसंगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥३॥

पाँच बार शिवपद कमल-

१-उपजेउ शिवपद कमल सनेहू। मिलन कठिन मनभा संदेहू॥४

२-शिव अनुशासन सुनि सबधाये प्रभुपद जलज शीशतिन नाये५

३-अवलोकि सकहिं न सकुच पतिपद कमल॥६॥

४-का देउँ पूरण काम शंकर चरण पंकज गहि रह्यो॥७॥

५-पुनि गहे पद पाथोज नयना॥८॥

वैसे तो जहाँ से शिवजी की बारात की चर्चा है।

लगे सवाँरन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान। से

जबहिं शंभु कैलाशहिं आये। सुर सब निज-निज लोक सिधाये

जहाँ तक कि शिवजी की बारात का किसी तरह भी संबंध है उन ११ दोहों में कमलशब्द केवल छ बार आया है। हाँ शंभु चरित्र बा० दोहा १०३ से आगे जो—

१-शिवपदकमल जिनहि रति नाहीं, रामहिते सपनेहु न सोहाहीं॥
२-जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिशाल ॥
३-चर अरु अचर नागनर देवा, सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥

तीनबार और भी शिवजी के नेत्र एवं पदके लिये कमल शब्द आया है। इनको भी उसी में जोड़ देने से ग्यारह तो हो जाते हैं परन्तु यथार्थ कमलका खिलना एकही बार लिखा है।

'बिकसे सरनि बहु कंज' वह भी गोस्वामीजी ने नहीं खिलाया है अपितु पौराणिक मतसे शिवजी का बिबाह फाल्गुन में हुआ था। फाल्गुन में सरों में कमल खिलते ही हैं, उसीका वर्णन बक्ता ने कर दिया है। इस एक स्थान के अतिरिक्त शिव बारात में और कहाँ कहाँ दश जगह कमल खिलाने का बर्णन है ? मेरी अज्ञानता से वे दशस्थल बिशेष मुझे तो नहीं मिले। शंकाकार महोदय कृपा करके यदि उन दसो स्थल का उद्धरण भेज दें तो पुनः नये सिरसे बिचार किया जा सकता है।

इन एकादश स्थल के कमल बर्णन का यदि कोई एका-दश रुद्र से सम्बन्ध स्थापित करता हो तो उसमें मुझे या किसीको भी कोई एतराज नहीं होना चाहिये, यद्यपि कि इसमें कोई तथ्य, कोई रहस्य नहीं है फिर भी जिस व्यासबंधुका—

'नारीनरन रिझाइबो और कमइबो दाम।' ही ध्येय रहताहै उसकी बिमूढ़ जनताका मनोरंजनतो शायद होताही हो,

और दैनिक आर्ती घुमाने पर कुछ पैसे भी मिल जाते होंगे।

शब्दशास्त्रियों ने बक् धातु और बच् धातु इन दोनों धातुओं से बक्ता शब्द की निष्पत्ति माना है। शंकाकार महोदय से सप्रेम अनुरोध है कि यदि कुछ स्वयं बिचार कर शंका नहींउठासकते तो वक् धातु से बने बकताओंकी सुरीली बकबकाहट परही कुछ तथ्य निकालकर शंका न उठाया करैं किन्तु बच् धातुसे निष्पन्न बक्ताके प्रबचन के तथ्यांशको लेकर 'बादे बादे जायते तत्व बोधः' की भावना से बिचार बिमर्श किया करैं। (मानस मणि १३।२)

* शंका २२ *

पुनि अनुसासन गनपतिहिं, पूजेउ सम्भु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि॥

कोई कोई कहतेहैंकि देवता अनादि हैं। शिव पार्वतीने जिन गणपतिका पूजन अपनेबिबाहमेंकियाथा वेही बादको उनके पुत्रहुए। इसमें क्या तथ्य है ? (महन्त रघुबरदासजी)

* समाधान *

एक पयोधर मुख दिए, दूजो खोजत जोय।
लखि दम्पति बहरावहीं, जग मंगल प्रद सोय॥

अपने बिबाह में श्रीशिवने जिनका पूजन कियाथा वेही बादमें उनकेपुत्र गजाननहुए ऐसा कहनेवाले तथ्यको ठीकठीक नहीं समझतेहैं। यदि समझपाते तो वैसा नकहते। तथ्य यहहै कि लोकमें जिसतरह एकपदपर भिन्नभिन्न व्यक्ति एककेबाद दूसरे हुआ करतेहैं। परन्तु पद वहीरहताहै और उसपदपर

बैठनेवाला एकहीनाम से पुकाराजाताहै जैसे राजा, राष्ट्रपति, मंत्री, पुरोहित, सेनापति, महान्त अधिकारी मुखिया, जज, कलेक्टर, तहसीलदार, दरोगा, जमादार आदि । जैसे एक कल्प में चौदह मनु, चौदह इन्द्र, चौदह सेनापतिषण्मुख चौदह सप्तर्षि आदि होते हैं और वे चौदह इन्द्र और मनु आदि बिभिन्न व्यक्तिहुआ करते हैं एकहीनहीं, परन्तु मनु एवं इन्द्रादि सुर तत्तत्पद प्रतिष्ठित्वेन अनादि कहे जाते हैं । वैसे ही गणपतिपद अनादि है । उस पदपर जो रहताहै वही पूजा जाता है । गणेशपुराण के क्रीड़ाखण्ड में एकबार कश्यपअदिति के पुत्र 'महोत्कट' का एकबार शिवपार्वतीकेपुत्र 'मयूरेश' का, और एकबार बरेण्यराजापरित्यक एवं पराशर पालित शिवापुत्रविपरूत्ताका गणेशहोना बर्णितहै । यहाँ इन कथाओं को संक्षेप में दे रहा हूँ ।

प्रथम कथा महोत्कट की

अंगदेश भागलपुर–बिहार प्रांत के चम्पकपुरी में बड़े धार्मिक ब्राह्मणदम्पति रुद्रकेतुशर्मा शारदादेवी के भावीबश सायंकालमें गर्भ धारणहुआ । समयपर दो तेजस्वी यमलपुत्र हुए । नामपड़ा देवान्तक, नारान्तक । युवाहोनेपर दोनों बड़े–बलवान एवं विद्वानहुए । मर्त्यलोककी समस्तविद्यायें पढ़लेने पर उन्हें नारदजीके द्वारा शिवपञ्चाक्षरी मंत्र प्राप्तहुआ ।

पञ्चाक्षरी महाविद्यामुभयोरुपदिष्टवान् ॥

(गणे० पु० २।१।४६)

तत्पश्चात् वेदोनों कैलाशपर शिवजीके पास पढ़ने शक्ति प्राप्तकरने गये । वहाँ शिवजीको प्रसन्न करके बरदानलिया कि–

त्रैलोक्य राज्यं भक्तिं च ह्युभयोश्चरणेऽर्पिते।
(गणे० पु० २।२।२७)

शक्ति प्राप्त करके—

यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुराऽऽसवम्। म०मा०

राक्षसोंकी तरह खानेलगे। व्यवहार भी राक्षसीही करने लगे और राक्षसदैत्यदानवादिकी सैन्य एकत्र करके तीनोंलोकों को जीतकर सताने लगे। देवान्तक स्वर्गपर शासनकरनेलगा और नारान्तकने नरलोकपर अधिकार जमाया। नागलोक पर दोनोंके नियतकिएहुए प्रतिनिधि शासन करनेलगे। देवता, मुनि सभी त्राहित्राहि करतेहुए ब्रह्माके पासगये। तब ब्रह्माकी प्रार्थना पर एक ईश्वरीय विभूति कश्यपअदितिसे पुत्र रूपमें आई। उस पुत्रका नाम महोत्कटपड़ा त्रिलोकीमें प्रसिद्धहो गया कि यह महोत्कट हो देवान्तक और नारान्तक को मारेगा। तब राक्षसबन्धुओंके द्वारा भेजीगई विरजानामकी राक्षसी विषमिश्रित दूधपिलाकर मारने आई। महोत्कटने उसे पदा-घातसे वैसेही मारडाला जैसे शकटको श्रीकृष्णने। जब महो-त्कट तीनवर्ष के हुये तबदोराक्षस तोतेकेवेषमें आये वे भी मारे गये। पाँचवेंवर्ष जब महोत्कटका उपनयन होनेलगा तब विघात, पिंगाक्ष, विशाल, पिंगल और चपल पाँच राक्षस, तपस्वीवेष में, उन्हें मारने आये वेभी मारेगए।

कथं व्यापादितः पंचराक्षसा कूटरूपिणः।
क्षणेनानेन बालेन०। (गणे० पु० २।१८।१५)

सातवर्षकी अवस्था में महोत्कटने समस्त विद्यायें एवं शस्त्रास्त्रकलायें पढ़लिया। जब दसवर्षके हुये तब काशीनरेश

अपने युवराजके व्याह करानेकेलिये पुरोहित बनकर महोत्कट को ले चले। रास्तेमें नरान्तकके श्वसुर धूम्राक्ष और साले जवन एवं मनु तीनों महोत्कटको मारने आकर मारेगए। सुन-कर नारान्तकने काशीनरेशपर सैन्यभेजी, महोत्कटने सारी राक्षसीसैन्यका नाश किया। तब नारान्तककी भेजी विषकन्या तेल लगानेआई महोत्कटने—

नारिकेलफलेनाशु मस्तके तां जघान सः।
(गणे० पु० २।१४।४४)

तब नारान्तकका भेजाहुआ=ज्वालासुर दैत्य काशीपुरी जलानेलगा। महोत्कटने उसेभीमारा। इसीतरह ज्योतिषी बनकर आयेहुये हेमासुरको मुद्रिकाछुआकर मारदिया। तब कूपकासुर और कन्दर दोराक्षसप्रबल बलीआये और मारे गये। यहीहाल देवान्तकके प्रधानसेनापति अंभासुर दैत्यका हुआ। तब अदितिके बेषमें अंभासुरकी पत्नी भ्रमरीआई और मारीगई। भ्रमरीके वधसे राक्षस भागगये इससे जनताने सार्बजनिक उत्सव मनाया। उन्हींदिनों काशीमें अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण दम्पति चन्द्रमौलि बिद्रुमादेबी का चावलोंके माड़ोंका आतिथ्य स्वीकारकरके उन्हें सर्बसम्पन्न बनादिया।

गृहं तस्मै शक्रगृहं द्वारं सद्रत्न कांचनम्।
अत्युत्तमं सुरूपं च ज्ञानं सम्पदमर्पयत्। गणे०पु.२४।५२

उसब्राह्मणदम्पतिके दरिद्रहोनेका कारण यहथा कि वे पूर्व जन्म में-'बुभुजुस्तान्स्वयं दुष्टा दांभिका भक्तिबर्जिता। २४।१४

अस्तु! तब काशीमें शूर और चपल दोराक्षस गुप्तबेषसे रहनेलगे मारने आकर महोत्कटसे भगायेगये उसकेबाद

तैयारीकरके- 'एवं नरान्तकः काशीराजस्यनगरीं ययौ ॥'
(गणे० पु० २।५६।६५)

युद्धमें काशीनरेश पकड़ेगये तब महोत्कटने लड़कर काशीनरेश को छुड़ाया और नारान्तक को बन्दीबनाया। बादमें नारान्तककी इच्छासे द्वन्दयुद्ध करके नारान्तकको मार डाला। नारान्तकके बधसे क्षुब्धहोकर देवान्तकने बड़ीसेना लेकर काशीको घेरलिया। तब योगिनियों-देवियोंने भी सिद्धि देवीके सेनापतित्वमें अपनादल लेकर महोत्कटकी ओरसे भयंकर युद्ध किया—

सस्मार चाष्टसिद्धी सा ताश्च याता मुदान्विताः।
तथा सैन्यं दशदिशो याति स्म युद्धलालसम् ॥ ६३।१८॥

घोर युद्ध हुआ इसमें—

कदा विजयिनो दैत्या कदाचिद्देवतागणः ॥ ४३ । ४२ ॥

युद्धमें देवान्तक मूर्छितहोनेपर सारथीद्वारा भगायगया—

स तु संज्ञां समासाद्य स्नात्वा तूष्णीं गृहे ययौ। ६५।२० ॥

तत्पश्चात् अघीरासुरकी सहायतालेकर देवान्तक आया और युद्धमें मारा गया। इस तरह महोत्कटने त्रिलोकी को निष्कंटककिया। तब देवताओंने महोत्कटका ब्याह सिद्धिदेवी के साथ करके उन्हें बिनायकपद-प्रथमपूज्यपदपर अभिषिक्त किया। यह एक मन्वंतरकी कथा गणेशपुराण क्रीड़ाखण्ड अध्याय ७२ तक में वर्णित है ॥१॥

दूसरी कथा गणेश मयूरेश्वर की

मिथिलाप्रदेशमें गंडकीतटपर चक्रपाणि नामक राजाथे। रानीकानाम उग्रा था, उग्रा नामसेहीनहीं, अपितु स्वभावसे

भी उग्रथी। जिसके परिणामस्वरूप उग्राके गर्भसे उग्रेक्षण नामका उद्दण्डपुत्र हुआ। सयाना होनेपर उग्रेक्षणने सूर्यका अनुष्ठान किया तो सूर्यने एकपात्र कंठमें बाँधनेकेलिये देकर कहा कि जबतक यह पात्र कंठमें बँधारहेगा तबतक तू उग्रेक्षण अजरअमररहेगा। राजाहोनेपर दिग्विजयकरके अपनानाम उग्रेक्षणसे बदलकर सिन्धुलरखकर सम्राट्बना। राक्षसदैत्य-दानवादि उसके सहायक हुये उसने इन्द्रको जीतकर—

दर्दौ पदानि देवानां दैत्यानां सकलानि सः। ॥७५।३७॥

दूसरीबार बिष्णुको गण्डकीनगरीमें नजरबन्द रखा। प्रजाको आज्ञादी कि समस्त देवी देवता बिष्णु शिवादिको न पूजकर सबकेबदले—

ममैव प्रतिमां कृत्वा पूजयन्तु गृहे गृहे। ७७।२५॥

अपनेगणोंसमेत शिवा-शिवभी संध्याक्षेत्रमें भागगये। वहाँ ऋषियों की सलाहसे शिव और सतीने परं-ब्रह्म का अनुष्ठान किया। जिसके फल स्वरूप भाद्रपदशुक्लचतुर्थी मध्याह्न सोमवार स्वातीनक्षत्र पंचग्रहउच्चस्थ सिंहलग्नमें पुत्र उत्पन्न होनेपर नामरखा मयूरेश्वर। बिश्वकर्माने शस्त्रास्त्र बनादिया। समयपर उपनयनहुआ। सतीनन्दनने बारहवर्षकी अवस्थामें लड़कर सिन्धुलको नष्टकिया। देवता लोग अपने अपने स्थलपर जाकर पुनः बसे। तबउन सती-कुमारका ब्याह ब्रह्माकीपुत्री सिद्धि और बुद्धिके साथ हुआ। इसकेबाद वे बिनायकपद आदिपूज्यपदपर प्रतिष्ठित किये गये।

तीसरी कथा विरूपाक्ष की

एकबार किसीकारण ब्रह्माकी क्रोधाविष्ट जम्भार-

जंभाई से महापराक्रमी सिन्दूरासुर पैदाहुआ। ब्रह्माने आशी-र्वाद दिया कि तू जिसको सक्रोध आलिंगनकरेगा वह मर-जावेगा। तबतो वह परीक्षण के लिये—

तमेवालिंगितु' चैच्छत् तत ऊचे पितामहाः।
त्वामुमा पुत्रः बधिष्यति० ॥ (१२७ । ३२)

कहकर ब्रह्माभागे। नारायणके पासगये । नारायणने युक्तिसे बचाया। तब शिवकेपास जाकर सिन्दूरासुरने उमा को छीननाचाहा पर शिवसे हारकर भागगया । कुछदिनमें शिवके विरूपाक्ष नामरूपवाला पुत्रहुआ । शिवने बिरूपाक्षको वनमें फेंक दिया । उसीसमय बरेण्य राजाकी रानी पुष्पिकाके परमसुन्दर पुत्र हुआथा पर कुछदैत्योंने ईर्षा-वश उसपुत्रको रानीकी प्रसूता बेहोशीमें बिरूपाक्षसे बदल दिया । उस कुरूपपुत्रको राजारानीने बनमें फिंकवादिया। वहाँ पराशरमुनिकी बत्सलादेवी नाम्नीपत्नीने पाला। परा-शरसे सभीशास्त्र एवं शस्त्रास्त्र ज्ञानप्राप्तकरके बिरूपाक्षने सिन्दूरासुरको मारा तब वे बिनायक-आदिपूज्यपदके रिक्त-स्थानपर प्रतिष्ठित कियेगये । तत्पश्चात् बिरूपाक्षगणपतिने बरेण्य राजाको गणेशगीता सुनाई ॥३॥ गणे०पु० २।१३७।१००

४—लिंगपुराणपूर्वार्ध अध्याय ६५ श्लोक ४६ से ४९ तक में एकबार तण्डिनाम ब्रह्मर्षिका गणपति होना बर्णित है।

५—लिंगपुराण अध्याय ६६ श्लोक १ और दो में एक बार राजा त्रिधन्वाका गणपति होना बर्णित है।

६—लिंगपुराण पूर्वार्ध अध्याय १०७ श्लोक ५४ से ५८ तक में ब्रह्मर्षि उपमन्युका एकबार गणपतिहोना बर्णित है।

७—शिवपुराणमें एकबार हिरण्याक्षकेपुत्र का गणपति होना वर्णित है।

८--स्कन्दपुराण प्रभासखण्डके चौवीसवें अध्याय में एकबार शिखण्डीनामक शिवगण का आदिपूज्य गणपति होना वर्णित है।

९--पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय ४० श्लोक ४६७ में एक बार वीरक नामक शिवगणका गणपति होना वर्णित है।

१०-कथा सरित्सागर लंबक ५ तरंग १ में वर्णित है कि एकबार स्तम्भक नामक शिवगण "आदिपूज्य गणपति" हुआ था। यथा-'एतस्य स्तम्भको नाम गणेशः स्थापितो निजः'।

११—लिंगपुराण अध्याय १०३ श्लोक १३ में वर्णित है कि शिवपार्वतीपुत्र गजाननके गणाधिप होनेकेपूर्व जो गणपतिपद पर आरूढ़थे उनका नाम करवीराक्ष या केकराक्षथा। और उनकेसाथ दस करोड़गण चलतेथे। उनके देवत्वभोग्य पूर्णहो जानेपर (आजकलकी भाषामें करबीराक्षके रिटायर्डहो जाने पर) पार्वतीपुत्र गजानन आदिपूज्य गणपतिपदपर प्रतिष्ठित कियेगये। संभवतः शंभुभवानिने अपनेविवाहमें करवीराक्ष-गणपतिका ही पूजन कियाथा।

१२-वर्तमानकालमें श्रीरामनामके प्रभावसे आदिपूज्य बननेवाले शिवपार्वतीपुत्र गजानन ही गणराजहैं।

(प्रेमसंदेश १८।६)

* शंका २३ *

भगवान शंकरजीके विशिष्ट इष्टदेव कौन हैं। यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रही उनके इष्टदेवहैं जैसाकि अनेक

ग्रंथों पुस्तकों में देखनेमें आयाहै तो कौनसे श्रीराममन्त्रका जपकरतेहैं और वह कितने अक्षरों का है। [शंकरीदयाल]

* समाधान *

राममंत्रप्रदातारं राममंत्रप्रजापकम्।
राममंत्रार्थवेत्तारं गौरीकान्तं नमाम्यहम्॥

भगवान् श्रीशंकरजीके इष्टदेव दशरथनन्दन श्रीरामजी-ही हैं—"सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा" स्वयं श्रीशंकरजीने ही स्वीकार कियाहै। श्रुतिस्मृतियोंसे अवगत होताहै कि श्रीशंकर-जी श्रीरामषडक्षर मंत्रके जापकथे—

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।

वह षडक्षरश्रीराममंत्र श्रीशंकरजीको भगवान् श्रीराम-जी से ही मिलाथा—

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वाऽपि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्यकस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मंत्रं स मुक्तो भविता शिव॥ रा.ता.उ.

'राम' शब्दही प्रकारान्तरसे श्रीरामषडक्षरमंत्र तारकब्रह्म का बीज' है और कईशास्त्रोंमें बीज जपका फल अधिक बत-लायागया है, इसीसे भगवान्शंकर नित्य रामराम ही जपते रहते हैं—

तुम पुनिराम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती॥
'राम नाम शिव सुमिरण लागे॥'

(मानस मणि ५।६)

* शंका २४ *

अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम-तम रबिकर बचन मम ॥११५॥

तथा इसी प्रसंगके अन्तर्गत ११६वें दोहेके पश्चात् प्र० चौ०-
ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी, मिटा मोह सरदातप भारी॥

श्रीशंकरजीने ११५ वें सोरठे में श्रीपार्वतीजीसे कहाहै कि ऐसा हृदय में बिचारकर सबसंशय छोड़ रामपदका भजन करो तथा भ्रमरूपी अंधकारके लिये सूर्यकी किरणोंके समान मेरे बचन सुनो। उपर्युक्त चौपाईमें श्रीपार्बतीजीने कहाहै कि चन्द्रमाकी किरणोंके समान आपके वाक्य सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह-सरदातप मिटगया। यहाँपर यहशंका होतीहैकि जिन वाक्योंको सर्वज्ञ जगद्गुरु श्रीशंकरजीने रविकरसम कहा उन्हें आदिशक्ति जगज्जननीने जो श्रद्धाकीमूर्तिहैं उसभांति न मानकर 'ससिकर' सम क्यों कहा। रवि-कर सममें क्या दोषथा अथवा श्रीपार्बतीजीने उस प्रकार मानने में क्या अहित समझा ?' (राजबहादुर कुलश्रेष्ठ)

* समाधान *

शिवगिरारविरूपकरं परं हिमसुताभ्रमहारककौतुकम्।
शिवशिवापदसेवितमन्वहं नमत श्रीरघुराजकिशोरकम ॥

(क) सतीजीको भ्रम और मोह दोनोंहुआ था—
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा, भ्रम वश वेष सीय कर लीन्हा॥

सतीजी अपना दोअपराध मानतीहैं- मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना।' यह पहिलाअपराध है, सर्व शक्तिमान ब्रह्मके अवतारलेने पर सन्देह प्रगटकरके उसे अवतार न लेसकने-

वाला मानना—ब्रह्मको अल्पशक्तिका माननाही ब्रह्म-रघुपति का अपमान करनाहै और-'पुनि पतिबचन मृषाकरि जाना।'

रघुपतिका अपमान करनेके बाद 'पुनि' पतिके बचनको मृषा जानना। [यदि पति-शंकरजीके बचनोंपर बिश्वास ही होगया होतातो परीक्षार्थ जातींही क्यों ?] ये दोनों ही अपराध मोह के ही कारणहुयेथे । श्रीरामजीके ब्रह्मत्व पर सन्देह करना महामोह है । श्रीरघुनाथजीके ब्रह्मत्वपर ही सन्देह होनेके कारण गरुड़जीको महामोह-ग्रसित, श्रीनारदजीने तथा श्री-शिवजीने कहाथा और श्रीगरुड़जी ने भी स्वीकार कियाथा— 'महामोह उपजा खग तोरे।' 'भयउ मोह वश तुम्हरिहि नाईं।'

'मोहिं भयउ अतिमोह प्रभुबंधन रणमहँ निरखि।'

'मोह जलधि बोहित तुम भये।'

इसी मोहको पार्बतीजी मिटाना चाहती हैं। श्रीसीता-रूप धारणकर परीक्षालेना सती एवं पार्बतीजी की दृष्टि में दोष-नहींहै और सामान्यतः परीक्षार्थ किंवा नाट्य प्रदर्शनार्थ वेष-बदलना दोष हैभीनहीं, यदि दोष होतातो नाट्यपरिषदके पात्र-गण कभीभङ्गीका रूपलेतेहैं, कभी देवराजइन्द्रका, कभी देवर्षि-ब्रह्मर्षि का, कभीपंडा, पुरोहित राजा भिक्षुक, धोबी, चमार, ब्राह्मण, क्षत्री आदिका स्वांगबनातेहैं परन्तु उनके तत्तद्वेषग्रहण करनेके कारण न तो आज या कभी जाति-समाज-परिवार-कुटुम्ब वहिष्कृत कियेगये और न किये जाते हैं । नाट्याचार्य श्रीभरतजीने भी उनमें वेष परिवर्तनके कारण कोईदोषएवं उसका प्रायश्चित नहीं बतलाया है। अतः सामान्यतः व्यव-हारशास्त्रानुसार परीक्षार्थ सती, श्रीसीताजी का रूप बदललेने

के कारण सर्वथा निर्दोष हैं क्योंकि किसीकुश्चित् बिचारसे तो उन्होंने सीतारूप लियाही नहींथा। इसीसे सतीजी एवं पार्वती जी उसे अपना दोष नहीं मानतीं। परन्तु विशेषशास्त्र भक्ति-शास्त्रके माने हुए परमाचार्य भगवान् शंकरजी उसीको स्व-भक्तिशास्त्रानुकूल दोष मानते हैं—

मिटै भक्तिपथ होइ अनीती।

इसीको श्रीनारदजीने भी कहा था--

भ्रमवश वेषसीय कर लीन्हा।

सियवेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी।!

सतीजीका भ्रमही शंकरजीकी दृष्टिमें विशेष अज्ञानान्धकारहै इसीसे :-'भ्रमतम रविकर बचन मम।'

कहा और पार्वतीजी मोहकोही बिशेष तम समझरही हैं:-

भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा।

सतीजीको प्रथम मोह हुआथा तभीतो शिवजीका कहना नहीं किया। शिवजी के :--

सोइ राम व्यापकब्रह्म भुवननिकायपति मायाधनी।

कहनेपर भी श्रीरामजीको ब्रह्म नहींमानाथा। उसीको अब पुनः पार्वतीरूपमेंभी स्मरणकर कह रहीहैं कि :-

तब प्रभुमोहिं बहुभांति प्रबोधा। नाथ सोसमुझिकरहुजनि क्रोधा तब कर अस विमोह मोहिं नाहीं।।' अतः अपने-अपने स्थान पर दोनों का भ्रम और मोह कहना ठीक है।

(ख) भ्रम और मोह दोनोंतमहैं। भ्रमको तम तो श्रीशंकर-जीही कहरहेहैं अन्यत्र मोहकोभी तम कहागया है-

'मोह आदि तम मिटै अपारा।'

भ्रम एवं मोह दोनो तमहैं तथा सूर्य और चन्द्रमा दोनों तमनाशकहैं, भेद इतनाहीहै कि सूर्यका प्रकाश तापान्वितहै और चन्द्रमाकाप्रकाश ताप हारक है। शंकरजी अपने वचन को तापान्वित सूर्य किरण इसलिये मानतेहैं कि उसवचनके आरम्भमें आक्रोशरूप तापभी है जैसे-

कहहिं सुनहिं अस अधमनर ग्रसे जो मोह पिसाच।
पाखण्डी हरिपदविमुख जानहिं झूँठ न साँच॥
अज्ञ अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ सन्त सभा नहिं देखी॥
कहहिं ते वेद असम्मतबानी। जिनहिं न सूझ लाभ नहिं हानी॥
मुकुरमलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमिदीना॥
जिनके अगुण न सगुण विवेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका।
हरिमाया बश जगत भ्रमाहीं। तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं
बातुल भूतविवश मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन विचारे॥
जिन कृत महामोह मद पाना। तिनकर कहा करिय नहिं काना
अस निज हृदय बिचारि तजि संशय भजुरामपद।

इस प्रकार दो दर्जनसे भी अधिक गालीदिया। सभ्य पुरुषोंकी गालीमें अश्लीलता नहीं रहती, इसतरहकी कठोर-वाणीही गाली है। इसीसे मिलती जुलती वाणीही परशुराम-जीने कहीथी जिसे लक्ष्मणजीने गाली कहाथा—

"गारी देत न पावहु शोभा।" परन्तु श्रीपार्वतीजीको वह सीखमय आक्रोश-गाली तापकारक न होकर—"राम स्वरूप जानिमोहिं परेऊ।" श्रीरामस्वरूप ज्ञापक होनेसे प्रकाशमय शीतल चन्द्रकिरणवत् बोधहोनेसे दोनोंकी दोनों उपमायें पात्र-विवरण भेदसे ठीक हैं। (मानसमणि १०।७)

*** शंका २५ ***

स्वायम्भूमनु अरु शतरूपा। जिनते भइ नर सृष्टि अनूपा॥

तो क्या मनुसे पहले नर सृष्टि नहीं थी ? नहींथी तो मनु-महाराज राज्यकिसपर करतेथे ? (जानकीप्रसाद अग्रवाल)

*** समाधान ***

सुरनराधिपमानवविग्रहं सतत श्रीमनुवंशप्रदीपकम्।
अवधपूरखिलाधिपनायकं, नमत श्रीरघुराजकिशोरकम्॥

वास्तवमें तो इस श्वेतबाराहकल्पके आरम्भमें सर्वप्रथम मानवी सृष्टिकी रचना मनुनेही किया और तब उन्हींपर "तेहि मनु राजकीन्ह बहुकाला।" दूसरे जिज्ञासित पंक्तिके 'अनूप' शब्द पर ध्यान देना चाहिये। मनु और व्यासजीका कहना है कि—

नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मासनातनः।'
'सृष्ट्वा नारं तोयमंतः स्थितोऽहं तेन मे नाम नारायणः॥'
'नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। (म० भा०)
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥' मनु १।१०)

अर्थात् नरका अर्थ परमात्माहै, इसी आशयसे नारदजी से वाल्मीकिजीने पूँछाथा कि—

महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्।' बा०रा०१।१।५

परमात्मा के सदैव अनेकों अवतार होते रहते हैं— संभवामि युगे युगे० (गीता० ४। ८) और उन अवतारों में कितने समानभीहोतेहैं। परन्तु स्वयंभूमनु एवं शतरूपासे नर-परमात्मा की जो नरसृष्टि हुई अर्थात्-मानव-अवतारहुआ वह अनूप हुआ, अर्थात् श्रीरामावतारके समान कोईभी अव-तार नहीं हुआ-यह अनूपनरसृष्टि हुई।

'न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते। श्वे० उ० ६। ८॥
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यः॥ गणे० उ० ४।१
न तत्समा चाप्यधिका च दृश्यते। गुह्यकान्युप० ४७
'नेदं यशोरघुपते सुरयांचयात्त—
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः॥ (भाग० ६।११।२८)
'जाके सम अतिशय नहि कोई।' 'आपुसरिस खोजौं कहँ जाई'
निरुपम न उपमाआन रामसमान राम निगम कहै।'
इसकल्पमें नर-परमात्माके अनुपम नर-सृष्टि-राजारूप होने का एकमात्र प्रबलकारण स्वायंभूमनु और शतरूपाहीहैं।

❋ शंका २६ ❋

द्वादस अच्छर मंत्र बर जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह, दम्पति मन अति लाग॥

शंका यहहै कि मनु कौनसा द्वादशाक्षर मंत्र जपते थे। प्रसिद्ध बासुदेव मंत्र या दूसरा कोई। क्योंकि प्रसिद्ध बासुदेव मंत्रसे तो चतुर्भुज नारायण किंवा व्यूहात्मक वासुदेवकी प्राप्ति होती है। द्विभुज परब्रह्म श्रीसीतारामजीकी नहीं। और मनु दंपतिको परस्वरूप द्विभुज श्रीरामजीकी साक्षात् प्राप्ति हुईथी।

(महांत रघुबरदास विशारद शिवनाम-बाराबंकी)

❋ समाधान ❋

महावीरं वीरं परमरणधीरं शरधरं
शिवाद्यैस्संसेव्यं सुरनराधिपमान्यं शुचितरम्।
महामंत्राधीनं सुखचिन्नवीनं सद्वपुं,
नमो नित्यं रामं नयनमभिरामं मा पतिम्॥

ऐसेविवाद तो प्रायः बनेही रहतेहैं कि श्रीसीतारामीय युगलमंत्रसे श्रीरामजीकी प्राप्ति होतीतोहै किन्तु उसकी द्वादशाक्षरमन्त्र संज्ञानहींहै । और मनुका दर्शनप्रकरण देखनेसे निश्चय होताहै कि प्रसिद्ध 'ॐ नमोभगवते वासुदेवाय' मन्त्र भी नहींहोसकता क्योंकि इसमन्त्रमें केवल भगवान्‌काही नाम आताहै । श्रीजीकानहीं और श्रुतिका सिद्धान्त है कि—

यथा नामी वाचकेन नाम्नायोऽभिमुखो भवेत् ।
तथा वीजात्मको मंत्रो मंत्रिणोऽभिमुखो भवेत् ॥
(रा० ता० पू० ४।३)

अर्थात् जैसे किसीका नाम लेनेसे वह नामवाला अभिमुख होजाताहै । उसीतरह वीजात्मक मन्त्रसे जिसका वीजहोताहै वह सन्मुखहोताहै । अतः वासुदेवमन्त्रका जप मनुजी ने किया यह नहीं कहाजासकता क्योंकि दर्शनतो श्रीसीता और श्रीराम दोनोंके हुयेथे । अतः बिचारणीयहै कि वह कौनसा मंत्रथा। ग्रन्थोंमें अनेकों द्वादशाक्षरमन्त्र हैं परन्तु सब भगवन्मन्त्र ही नहीं हैं । आनन्द रामायण में 'श्रीसीतारामं वन्दे श्री राजा रामं' यह द्वादशाक्षरमन्त्र श्रीसीतारामकाहै परन्तु यह जपकानहीं कीर्तनकाहै इसकेलिये वहीं लिखाहै कि—

द्वादशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयो सदा जनैः ।
वीणावाद्यादिना पुण्या सर्ववांछितदायकः ॥
(आ० रा० ६।१५।२६)

दूसरेयह कि इसमें नामकी पुनुरुक्ति होनेसे यहमन्त्र जपनीयनहीं अपितु कीर्तनीयहै । भागवतमें प्रसिद्धहैकि नारद तथा ध्रुव आदि जिन्होंने द्वादशाक्षरमन्त्र जपाथा उन्हें अकेले

भगवानकाही दर्शन मिला श्रीजीकानहीं । और अगस्त्यसंहिता में लिखाहै कि एक द्वादशाक्षरमन्त्र श्रीरामजी और उनकी शक्ति का भी है—अ० सं० अध्याय ३२—

स्वकामशक्तिवाग्वर्णान्नारसिंहमतः परम् ।।७४।।
लक्ष्मीपाशांकुशार्णानि वाराहं फट् स्वरूपकम् ।।
स्वाहेति रामभद्रस्य द्वादशाक्षरमीरितम् ।।७५।।

और उसका महत्वभी वहीं कहाहै कि—

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं स गच्छति ।। (८०)

मन्त्र का रूप—श्रीरामभद्रका प्रकरण चलरहा है इसलिए स्वका अर्थहुआ रामबीज (राँ) कामबीज (क्लीं) शक्तिबीज (ह्रीं) वाग्बीज (ऐं) नृसिंहबीज (क्ष्रौं) लक्ष्मी-सीता बीज (श्रीं) पाशधारी वरुणका बीज (आं) अंकुशधारी विघ्नारिका बीज (क्रौं) वाराहबीज (हुं) और (फट्स्वाहा) अर्थात् "राँ क्लीं ह्रीं ऐं क्ष्रौं श्रीं आं क्रौं हुं फट् स्वाहा।" पूर्वोक्त श्रुतिमें कहागयाहै कि जिसके बीजवाला मन्त्रहोताहै वह प्रगटहोताहै। और इस-मन्त्रमें सीताराम दोनोंका बीजहै तथा मनुके सामने सीताराम जीके प्रगटहोनेसे यहीनिश्चय होताहैकि उपर्युक्त अगस्तसंहिता वाला द्वादशाक्षर राममन्त्र मनु दम्पति जपतेथे। प्रश्न हो सकता है कि इसमन्त्र में तो ९ बीजहैं फिर नवो प्रगट नहोकर केवल सीताराम दोही क्यों प्रगटहुए ? इस संभावित शंकाका समाधान उस दर्शनप्रकरणके देखनेसे ही होजाताहै। दर्शन-कालमें रामजीके लिये कहागया है कि—

उपजहिं जासु अंस ते नाना। संभु विरंचि विष्णु भगवाना।।

और सीताजीके लिये कहा गयाहै कि—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित रमा उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

और श्रीरामजीने स्वयं कहाहै कि –

आदिसक्ति जेहिजग उपजाया, सोउ अवतरिहिं मोरि यहमाया।

इससे निष्कर्ष यहनिकलाकि उपर्युक्तमन्त्रमें श्रीसीतारामजी से अतिरिक्त जो सात बीज और हैं उनके अधिष्ठातृगण श्री-सीतारामजीके अंश (कार्य) हैं और अंशी (कारण) में उनका समावेश हो ही जाताहै इससे श्रीसीतारामजीही प्रगट हुए अन्य सात नहीं। दूसरे मनुने माँगाभी यहीथा कि--

जो स्वरूप बस सिव मनमाहीं। जेहिकारन मुनि जतनकराहीं
जो भुसुण्डि मनमानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा
देखहिं हम सोरूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन

यहाँ बर्णित लक्षण श्रीसीतारामजीमें ही संघटित होते हैं अन्यमें नहीं। इसीसे सीतारामजी ही प्रगट हुये अन्य नहीं।

प्रश्न– अगर इसी मन्त्रको जपतेथे तो यह क्यों कहा गया है कि- वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग।"
इससे तो मालूम पड़ताहैकि चतुर्भुजविष्णुकाही ध्यान करतेथे।

उत्तर—यदि चतुर्भुजविष्णुकाही ध्यान करतेहोते तो विष्णु तो स्वयं अनेकोंवार आयेथे उन्हींसे निजअभीष्ट मांगलेते—

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहुबारा॥
मांगहु बर बहु भांति लुभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥

कहागया है। वासुदेव शब्दसेभी यही सूचित होताहै कि वे किसीविग्रहविशेषका ध्यानन्हीं धरतेथे। क्योंकि 'वासुदेव'

भगवान्‌के किसीरूप विशेषका नामनहीं है वहतो निवासार्थक वसु धात्वात्मक और क्रीड़नार्थक 'दिवु' धात्वात्मक शब्दों के समाहार से बना है। जिसकी व्युत्पत्ति इस तरह होगी कि— 'वसति सर्वत्रेति वासुः वासुश्चासौ देवः वासुदेवः' अर्थात् सर्व व्यापक एवं क्रीड़नशील परमात्माका नाम वासुदेवहै। इससे यही स्पष्ट हुआ कि वे किसीरूप विशेषका ध्याननहीं करतेथे।

प्रश्न—जब किसी रूपविशेषका ध्यान न किया जायगा तो कोई रूप कैसे प्रगट होगा।

उत्तर--मन्त्र जप के प्रभाव से। यथा-

लोके पूर्व ज्ञात स्वरूपस्तथाऽऽज्ञात स्वरूपो वा नामी यथा स्वनामोच्चारणेन सन्मुखो भवति तथा ऽज्ञातस्वरूपो-ऽपीश्वरः स्वनामोच्चारणमात्रेण साक्षात्कृतो भवतीति।
श्रीरामतापिनी भाष्य पूर्वार्द्ध १।१२ (मानसमणि २१।४)

* शंका २७ *

"उरश्रीबत्स रुचिर बन माला।"

श्री सत्य श्रुति जगबिदित जो सोरामबाम विभाग राजहिं।

जब श्री (सीता) जी प्रत्यक्ष साथमेंहैं तब मनुकेसामने "उर श्रीबत्स" क्यों ? [पं० रामकुमार उपाध्याय रामा०]

* समाधान *

बसतिनित्य हरिहृदय श्री सिय छबिनिधि जगमूल।
निज 'कुमार' मोहिं मानि सोइ हरिहिं सकल भवशूल॥

यह ठीकहै कि श्रीसीताजी सततकाल हरि-हृदयस्थल में विराजती रहती हैं 'मममनसीता०।' अत भगवदुरःस्थल श्रीजीका लीलानिकेतनहै जैसे महारानीके बाहरविहरने परभी

उनका शयनकक्ष क्रीड़ानिकेतन बनाही अथच सजाहीरहताहै। वैसेही श्रीजी प्रत्यक्ष 'वामभाग सोभित अनुकूला' हैं तोभी वह लीलानिकेतन अलंकृतही दिखाई देता है। अर्थात् भगवद्वक्ष-स्थल पट्टमहिषी श्रीजीके विराजनेका पीठ-सिहासन पलंग है। श्रीजीके लीलागृह श्रीहरिउरः स्थलमें सुन्दर पुष्पमाला बिछा रहता है। श्रीजीके लीलागृह श्रीहरिउरः स्थलमें रत्नोंकी लड़ियाँ शोभित रहतीहैं। श्रीजीके लीलागृह श्रीहरिउर में रंगवलियाँ रावणादि के बाणोंकी रेखायें हैं। श्रीजीके लीला-गृह श्रीहरिउरः स्थलमें मंगलदीप कौस्तुभका प्रदिक प्रज्वलित रहता है। श्रीजीके लीलागृह श्रीहरि उरः स्थल में इत्र-चन्दन-कपूर आदिका सुगंधित लेप रहता है। 'शायद इसीसे पुरुषों के वक्षस्थलमें इत्र लगायाजाता है।' अस्तु

[यह भाव 'यतिराजसप्तति' की व्याख्या से लियागया है।]

* शंका २८ *

'विविधमृगनकर आमिषराँधा, तेहिमहँ विप्रमाँस खल साँधा॥

मनमें दोसंदेह हुए। क्या विप्रकामांसभी पकाकर मिलाया गया? इसपरसे ऐसा भासताहैकि उससमयके सामाजिकखान-पानमें आमिषभोज्यपदार्थ ब्राह्मणोंकेलिये त्याज्यनहींथे लेकिन यहकल्पनाभी चित्तको विभ्रम करदेती है? २-यदि विप्रमांस नहींपकायागया तो उस मांसकेलिए विप्रशब्दका उपयोग महा-कविनेक्यों किया? क्या प्रसंगने उन्हें ऐसाकरनेकेलिए मजबूर किया और क्या वह तर्कसम्मतहै यदिहैतो किसबुनियादपर?

समाचार की दूसरी संदेह ग्रस्त पंक्ति-'भयेउ रसोई भूसुर मांसू' है इसमेंभी उपर्युक्त शंकाएँ हैं। (पृथ्वीराय देशमुख)

* समाधान *

समगुणगणपारं सज्जनानन्दकारं,
त्रिभुवनसुखसारं संततं सद्विचारम्।
विमलवरविहारं निर्जितानन्तमारं,
प्रमुदितपरिवारं नौमि कौशलकुमारम्॥

भूलोकमें चराचरप्राणियोंकी शरीरोत्पत्ति चारतरहसे होती है—'चारिखानि जगजीव अपारा।' स्थावरकी उत्पत्ति जल वायु और मृतिकाके संयोगसे बीजमें अंकुररूपेण होती है इसके बनस्पति, वृक्षलता, गुल्मबीरुध, औषधि और तृणादि अनेक भेदोपभेदहैं। गर्मी और सर्दीके समानसंयोगको पाकर उत्पन्नहोजानेवाले ऊष्मजकहातेहैं मशक, दंश, मत्कुण, ढील, चीलरआदि एवं अनेककीट पतंगआदि बहुतभेद ऊष्मजकेहैं। नरमादाके संयोगसे प्रथम गर्भसे अण्डा पैदाहोकर कुछकालके बाद उसी अण्डेसे पैदाहोने वाले प्राणीकानाम अण्डजहै इनमें सर्प, कच्छप और पक्षी आदि हैं। जेर-जरायुमें लपटेहुए पैदा होने वाले जरायुज या पिण्डज कहलाते हैं जिनमें मनुष्य और पशुहैं। इन चारोंतरह पैदाहोनेवाले प्राणियोंके परस्परमें भी अनेक प्राकृतिकभेद होतेहैं और सबका अलग-अलग अन्वेषण करनेसे कई बड़ी २ स्वतंत्र पोथियाँ तैयारहो सकतीहैं। यहां केवल पिंडजोंके कुछ मोटे-मोटे भेद लिखे जातेहैं जोकि बहुतप्रत्यक्ष-स्पष्ट हैं। इस भेददर्शनसे आगे आपके समाधान में सुगमता होगी। पिंडजोंमें दोश्रेणीहै एक मांसाहारी और एक घासाहारी अर्थात् एकका प्राकृतिकआहार मांसहै और एकका घास-तृणफल फूल अन्नादि। इसलिये दोनों श्रेणियों में

प्रकृतिदत्त कुछऐसे भेदहैं जिसे कोईभी कभीनहीं हटासकता अर्थात् वे भेद सार्वकालिक हैं जैसे—

१—मांसाहारीकेदाँत बराबर नहींहोते। घासाहारी केदाँत बराबर होते हैं।

२—मांसाहारीकेदाँत नोकदार और टेढ़े होतेहैं। घासाहारी के दाँत वैसेनहीं होते।

३—मांसाहारी कोईभी चीज चिबाकरनहींखाते निगलजाते हैं। घासाहारी डाढ़से चबाकर खातेहैं।

४—मांसाहारीकेदाँत जल्दी टूटजातेहैं। घासाहारीकेदेरमें।

५—मांसाहारी अल्पायुहोतेहैं। घासाहारी दीर्घायु।

६—मांसाहारी मक्कार-चालबाजहोतेहैं, घासाहारी निष्कपट।

७-मांसाहारी ऐयाश-दुश्चरित्र अधिकहोतेहैं घासाहीरीकम।

८—मांसाहारी दूध या जलादिपेय जीभसे चाटकर पीतेहै। घासाहारी ओष्ठलगाकर पीतेहैं।

९—मांसाहारीके पसीना नहींआता। घासाहारीके पसीना होताहै।

१०—मांसाहारीका नख पैना नोकदार होताहै। घासाहारी का नख गोल होताहै।

११—बड़ेसेबड़े मांसाहारीकी आँत अभीतक चौदह इंचसे बड़ी नहीं पाईगई। घासाहारीकी आँत इतनी बड़ी होतीहै कि सर्वांग में नखसे शिखतक तीनबार लपेटी जा सकती है।

१२—मांसाहारीके दिलकीधड़कन प्रतिमिनट कमसेकम पचहत्तर बारहोतीहै। घासाहारीके दिलकी धड़कन प्रतिमिनट अधिकसेअधिक अट्ठावन बार होती है।

१३-जिसछिद्रसे मांसाहारीका सिर निकलजाताहै उसछिद्र से उसका साराधड़ निकलसकताहै पर घासाहारीका ऐसानहीं

१४-मांसाहारीके लेंढ़ लगती है। घासाहारीके लेंढ़ नहीं लगती। (मैथुनकालमें उलटजानेको लेंढ़ कहाजाता है)।

१५-मांसाहारी रातमें आखेट करतेहैं सोतेनहीं। परन्तु घासाहारी रातमेंही खूब सोतेहैं दिनमें कम।

१६-मांसाहारियोंको रोग अधिकहोताहै घासाहारियोंको कम।

१७-मांसाहारीपशुके मुँहमें लार नहींहोता। घासाहारियों के मुँहमें लार होताहै।

१८-मांसाहारी स्वाभाविक क्रोधी होताहै। घासाहारी स्वाभाविक क्रोधीनहींहोता अपितु कारणपाकर क्रोधकरताहै।

१९-मांसाहारीपशुके शरीरसे दुर्गन्धनिकलतीहै घासाहारीके नहीं।

हदीसमुहम्मदी में लिखाहै कि—मांसखानेसे आदमको दशदण्ड और हौव्वाको १५ दण्ड दियागया। आदमको १० दंड-

१-अमृतफल न मिलेगा। २-बिहिश्तका वस्त्र न मिलेगा। ३-स्त्रीके पास नंगे जावोगे। ४-बिहिश्तसे बाहरजावो। ५-कामवासना प्रबलरहेगी। ६-तुझपर शैतानका अधिकार रहेगा। ७-तू शैतानसे भय करेगा। ८-पापकरेगा। ९-तुझे दुःखहोगा। १०-और तू ललचाया करेगा।

हौव्वा को १५ दण्ड—

१-रजस्वला होवो। २-नौमास गर्भ रखो। ३-प्रसव पीड़ा सहो। ४-पतिके आधीन-बशरहो। ५-पतिकी अवाँछित आज्ञायें भी मानो। ६ थोड़ाभागमिले। ७-स्त्रियोंकेनामसे तलाव नहो।

८-पतिकी सेवाकरो। ९-स्त्रीकी साक्षी न मानी जाय। १०-नबी न हो सकेगी। ११-स्त्रीको सलाम न कीजावेगी। १२-बुद्धिमें दशवाँभाग मिलेगा। १३-जहाद न करसकेगी। १४-जुमाकी नमाज न पढ़सकेगी, और १५-स्त्रियोंका कोई विश्वास न करेगा। (कबीरमंश्यूर से उद्धृत)

उपर्युक्त प्रकारके घासाहारी पिंडजोंके सभीलक्षण मनुष्य में पायेजातेहैं, मांसाहारीके एकभी लक्षण मनुष्यमें नहींमिलते अतएव मनुष्यका स्वाभाविक भोजन मांसनहींहै पुनः जिसका जो भोजन प्राकृतिक होताहै वह उसे उसकीअसलीहालतमें खासकताहै, जैसे घासाहारी पशु या मनुष्य कोईभी फल या अन्न कच्चा खासकताहै और मांसाहारी मांसको कच्चाही खासकताहै पर मनुष्य कच्चामांस नहींखासकता। अपने प्राकृतिक नियमके प्रतिकूल चलनेवाले मनुष्य राक्षसकहे जातेहैं, राक्षसों की सबबातें मनुष्योंसे मिलतेहुएभी वे क्रव्यादहोनेकेकारण ही राक्षसकहे जातेहैं। युग–समयके प्रभावसे पूर्वयुगके राक्षसोंका मेदा इतना मजबूत होताथा कि वे मांसको कच्चेही हजमकर डालतेथे, पर वर्तमानकालिक राक्षसगण मेद एवं जठराग्निकी कमजोरीके कारण वैसेनहीं हजमकर सकते तो आगमें पका–कर खातेहैं। अस्तु—जीवहत्याके कर्म गन्देहैं उनकाफल उत्तमनहीं होता इसीसे वेदभगवान भी ऐसाही आदेशदेतेहैं।

अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येन। अथर्ववेद ७।५।४

भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठ उपासनावहीहै जिसमें जीवहिंसा नहींहोती

मुग्धा देवा उत शुना यजन्त उत गोरंगैः पुरुधा यजन्ति।

अथर्ववेद ७।५।५

वे एक तरहसे पागलहैं जो कुत्तासेलेकर बकरागाय तक के मांसको खातेहैं या पशुओंके अङ्गोंको काटकर किसीको खिलानेसे परमात्मा अथवा देवताओं का प्रसन्नहोनामानतेहैं।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रतिष्टो भन्त्यक्तुभिः।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥

ऋ० ५।८४।२ तै० सं० २।२।१२।३

जोमांस खाता है वह नारकीहोताहै सर्वदादुःखमें पड़ा रहताहै उसकामुखदेखनाभी पापहै। बहुतअच्छाहो कि ऐसे पापी मांसाहारी सदैव नारकीस्थानोंमेंही पड़े रहें।

आमे सुपक्वे शवले बिपक्वे यो मां (सं)पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मनां प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥

अथर्व ५।२६।६

यः अशने=जो मनुष्य अपने भोजनमें
आमे, सुपक्वे=कच्चा या खूब पका (चुरा-सीझाहुआ) या
शवले विपक्वे=अधपका या किसीअन्यखाद्यवस्तुमें मिलाकर पकायागया।
मांसं ददम्भ=मांस (किसीप्राणीकामांस) खाता है।
(स) पिशाचः=वह मनुष्यरूपमें पिशाचहै।
तत् आत्मना=मांसाहारी पुरुष स्वयं तथा
प्रजया पिशाचा=मांसभोजीपिशाचरूपी परिवारके साथ
वि यात यन्ताम्=समाजसे सर्वदा हटादियाजाय। तभी
अयम् अगदः अस्तु।=यह सुसभ्य समाज निरोग होगा।

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अधिकरण ४ अध्याय १३ में अतिचारदण्ड' प्रकरण के आरम्भही में ५ सूत्रों में बताया है कि राजाको चाहिये कि—

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयतः उत्तमोदण्डः ॥१॥
क्षत्रियं मध्यमः ॥२॥ वैश्यं पूर्वः साहसदण्ड ॥३॥
शूद्रं चतुष्पंचाशत् पणो दण्डः ॥४॥
स्वयं ग्रसितारो निर्विषया कार्याः ॥५॥

जो मनुष्य अपेय (मद्यादि) या अभक्ष्य (मांसादि) किसी ब्राह्मणको बलात् पिलाखिला दे तो उसपर ४३२) दण्ड जुर्माना होना चाहिये। क्षत्रियको कोई मद्यमांस पिलाखिलादे तो उसपर २१६) दण्डहो। वैश्यको कोई मांसमद्य खिलापिलादे तो उसपर १०८) दण्डहो और शूद्रको कोई मांसमद्य खिला-पिलादे तो उसपर ५४) दण्डहो। यदि ब्राह्मणादि वर्ण स्वयं मद्यमांस सेवनकरें तो उन्हें स्वदेशसे निकालदियाजावे। अस्तु

जब मनुष्योंका स्वाभाविकभोजन मांसनहींथा तब कैसे कहाजासकताहै कि भानुप्रतापके समयमें सतयुगमें मनुष्यलोग मांसखातेथे। अब आपका प्रश्नहैकि तब मांसकी रसोईक्यों-बनी और आकाशवाणीद्वारा विप्रमांसका निषेधकियागया? इस सारेप्रसंगपर विचारकरनेसे समाधानहोजाताहै। कपटी मुनिने राजासे यहीतो कहाथा कि—

जौ नरेश मैं करौं रसोई। तुम परसहु मोहिं जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई।

यहाँ मांसकेलिये नहींकहागयाथा। रसोईमें मायामय छरसचारिविधिके अनेकव्यंजन बनायेगयेथे, उसीअन्नमें मांस मिलादियागयाथा, इसलियेकि देखनेसे पता न चलैकि इसमें मांसमिलाहै क्योंकि यदि देखनेमें पताचलजायगा तो राजा-परोसैगेहीनहीं; और जब ब्राह्मणोंकेसामने मांसजायगाहीनहीं

तो वे श्राप क्यों देंगे। श्रापदेनेकेलियेतो किसीएक पशुपक्षीका मांस पर्याप्तथाही पर उसने बिप्रमांस इसलिये मिलादियाकि जितनाबड़ा अपराधहोगा उतनाबिशाल दण्डभी दियाजायगा। केवल मृगमांस रहनेसे संभवतः कुछ दिनोंकेलिये मांसाहारी मृग या राक्षसादि होनेमात्रका श्राप दें जैसाकि बशिष्ठजीने वीर्यसहराजाको बारहबर्षतक राक्षसहोनेका श्रापदियाथा। इसीलिये उसखलने विप्रमांसयुक्त रसोईबनाया और प्रथमबार की आकाशबाणीभी उसीखल कालकेतुनेही कियाथाकि—

है बड़िहानि अन्न जनिखाहू। भयउ रसोई भूसुर माँसू॥

शंकाकरनेवाले कहसकतेहैं कि राक्षसने ब्राह्मणोंको क्यों सावधानकर दिया, लाखोंब्राह्मणपरिवार भ्रष्टहोजातेतो उसकातोदल बढ़हीजाता उसकी क्या हानिथी ? यहठीकहै कि मांसाहारीब्राह्मण राक्षसकेदलकी बृद्धिकरते जैसे कि ब्राह्मणोत्तममहर्षिपुलस्त्यकेवंशज मांसाहारीहोनेकेकारण राक्षसहुये। परन्तु इससे कालकेतु और कपटीमुनिका अभिलषित मनोर्थ न सिद्धहोता क्योंकि यदिब्राह्मणलोग भूलसेभी मांसखालेते तो उनकाब्रह्मतेज तुरन्तही नष्टहोजाता और तब उनका श्रापभी नलगता। जिनमें ब्रह्मतेज या किसी प्रकारका सात्विकतपः तेज नहींरहता उनका श्राप या आशीर्वाद नहींलगता, आजतो प्रत्यक्षहीहै—कितने ब्राह्मणवंशज दिनरात श्राप और आशीर्वाद का सदाब्रत घूमघूमके बाँटाकरतेहैं परन्तु तेजहीन होनेसे कुछ असरनहींकरता और राक्षसहोनेपर राजाउन्हें मारडालता। पुनः

परसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकाशबानी तेहि काला॥

अभी सबके सामने परसानहीं गयाथा तैसेही राक्षस

आकाशमेंजाकर बोलपड़ा, उसकोतो डरथा ही कि देरतो परसने में लगेगीही और इस बीचमें यदि किसीतरह भेदखुलगयातो उलटे लेनेके देने पड़जायँगे कहीं वह आपकी व्यवस्था मेरे-ऊपरही न पड़जाय, इससे ऐसे ढंगसे कहाकि ब्राह्मणोंने तुरन्त ही घोरश्राप देदिया परन्तु फिर देववाणीहुई। दूसरीबारकी आकाशवाणी देववाणीथी इसीसे उसकेलिये बरगिरा कहा गया। 'भइ बहोरि बरगिरा अकाशा॥' अब इसतरह सारे प्रसंगको अच्छीतरह देखनेसे पता चलताहै कि उससमय या किसीभी धार्मिकसमयमें सामाजिक खानपानमें आमिष भोज्य-पदार्थ मनुष्यमात्रके लिये ग्राह्य नहींरहता। (मा० म० ६।६)

❋ शंका २६ ❋

जब प्रताप रवि भयउ नृप फिरी दुहाई देस।
प्रजा पाल अति वेद विधि कतहुँ नहीं अघलेस॥

ऐसाधार्मिकराजा बैरीके चंगुलमें क्योंफँसा उसकेअज्ञान-वश ब्राह्मणोंकाअपराध हुआ, शापलगा पीछे ब्राह्मणोंने शाप का मार्जन भगवान्केहाथ करवाया परन्तु प्रथम कपटमुनिसे इस धार्मिक राजाका सकुलविनाश क्योंहुआ? कपटमुनिका क्याहुआ? (सेठ निवासदास पोद्दार)

❋ समाधान ❋

जीवानां हितचिन्तकं प्रतिपलं जीवान्प्रमोदप्रदं,
दुष्टान्वै भयभीतिभूरिकरणं शिष्टान्सुमोदं भरम्।
भक्तस्यैव वशे सहानुजसदा भक्तो हि यस्यात्मभू-
स्तं रामं सुगुणार्णवं परतरं नित्यं भजे श्यामलम्॥

धर्मधुरीण महर्षियोंने धर्मतत्वपर बहुत बहुत ऊहापोह-करके धर्मराशिको सामान्य और विशेष रूपेण दोभेदोंमें विभक्तकियाहै, उनमें विशेषधर्म तो भगवच्छरणागति है जिसमें त्रुटिपाने एवं पूर्णकरनेका कोई प्रश्नहीनहीं जबकि—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायतो महतो भयात्।

और भगवत्प्राप्तिके अतिरिक्त समस्तधम समूह सामान्य धर्महैं। करुणावरुणालय श्रीहरिने अनन्यगतिकभक्त एवं सखा श्रीअर्जुनजीसे सामान्य धर्मोंके लियेही गीतामें—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। १८।६६

कहाथा, क्योंकि सामान्यधर्म कच्चा काँचका टुकड़ा-सरीखाहै, उसके किंचित्मात्र त्रुटिसेही सम्पूर्ण सर्विधि सम्पा-दित कर्मधर्म पर सर्वनाशत्व उपस्थित होजाताहै, क्योंकि—

'धर्मस्यतत्त्वं निहितंगुहायाम् ' म० भा० बनपर्व ३१२। ११५

'धर्मस्य सूक्ष्मागतिः।'

सामान्यधर्मोंके सम्बन्धमें प्रातः स्मरणीय श्रीगोस्वामी-जीने कहाहै कि—

पायेहिपै जानिबोकर्मफल भरिभरि वेदपरोसो॥ वि०प० १७३

महाराज प्रतापभानुजी परमधार्मिकथे, धर्मतत्वके ज्ञाताथे, सामान्य वैदिकधर्मोंके सावधान अनुष्ठाताथे। परन्तु उनकी बहुतबड़ी महत्त्वाकांक्षाने उनसे बहुत बड़ेबड़े तीनअप-राध करादिया।—

जरामरण दुख रहित तनु समर जितै जनि कोय।
एक छत्र रिपु हीन महि राज्य कल्प सत होय॥

ऐसी महान्आकांक्षा एकसंसारीराजाकेलिये किसीप्रकार

भी अनुचितनहीं अधर्मनहीं परन्तु इसकीपूर्तिकेलिये कपट-मुनिकेवाग्जालमें पड़कर वे जो तीनभारी अपराधकरबैठे उसी-से घोरपतन एवं दारुणशाप हुआ। वे तीनोंघोरअधर्म ये हैं—

(१) जब राजाप्रतापभानुने उस कपटमुनि–समरसेनको महामुनि–परमसाधु जाना तोफिर उससे सेवा क्योंलिया कि अपने स्वार्थपूर्तिकेलिये लाखोंपरिवारके वास्ते नित्य साल-भरतक रसोई करनेको नियत किया? अपनेअतिथि-सम्बन्धी एवं परिवारया अन्यकेलिए नित्य रसोईबनवानासेवा-निंद्यसेवा है

"नरेन्द्र! सूदः परिचारकोऽस्मि०। महाभारत ४।८।६

'सूदकर्माणि हीने त्वमसमये भरतर्षभ।' महा० ४।१६।२

कह गिरिधरकविराय तपै वह भीम रसोई।

को न करै घटिकाम पड़े अवसरके सोई॥ गिरिधर कुँ०

दूसरे की रसोई पकाना 'हीन सेवा' है और साधुसे सेवा कराना निशिचरत्व है—

साधुन सन करवावहिं सेवा॥

जिनके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सम प्रानी॥

(२) दूसराअपराध है राजमंत्रीसेछिपाव। राजाको अपनी कोईभी राजकाजसम्बन्धीबात मंत्रीसे कभीनहीं छिपानीचाहिए जबकि—'एकछत्र रिपुहीनमहि राज कलपसत होय।'

जहाँ राज्यसंवर्धन एवं स्थायित्वकी योजना बनाई जारही हो, उसेतो किसीप्रकारका दुरावकरनाही नहीं चाहियेथा—

देश कालात्ययोमाभूदितिपरीक्षममात्यैः कारयेत।

(कौटिलीय अर्थशास्त्र १।६।१४)

अर्थात् उचित देश और काल, किसीप्रकार त्रुटि न हो

इसलिये राजाको चाहियेकि राज्य सम्बन्धी साराकाम मंत्रियों सेही करावे।' राजाप्रतापभानुने इसनीतिकी अवहेलना की इससे राज्यसे भ्रष्ट होगया ।-राज कि रहै नीति बिनु जाने। इतनातो सबको सामान्यरूपसे ख्याल रखना चाहियेकि जब कोई किसीबातको सबसे छिपानेके लिये कहताहोतो समझलेना चाहियेकि इसमें जो छिपानेके लिये कहताहै उसीका स्वार्थहै, जिससे छिपानेकेलिये सिखाया जाताहै उसका स्वार्थनहीं है। कोईभी गोपनीयतंत्र सबसेनहीं छिपायाजाता रहस्यभेदके अधिकारी होतेहैं। परन्तुवहाँ जबकपटमुनिने कहाकि—

छठे श्रवन यह परत कहानी।

तो राजाप्रतापभानुको इसपर बिचारनाचाहिये था।

(३) तीसरा महान् अपराध परमप्रबलपाप पुरोहितके साथ छलकरवानाहै। जब कपटमुनिवेषी राजासमरसेनने प्रतापभानुसे कहाकि—

तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥
तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौं इहां वर्ष परमाना॥
'मैं आउब सोइ वेषधरि०॥' तब राजाप्रतापभानुको सोचना—चाहियेथा कि ऐसातो मुनिका कार्यनहीं है अपितु राक्षसोंकाही यहकामहैकि मनुष्यको चुरालेना-हरण कर लेना एवं विभिन्न कपटवेष धारणकरलेना—

'निसिचर निकर नारिनरचोरा' 'कपटवेष विधि कोटिककरहीं'

अतः यह कैसा मुनिहै जो मनुष्यको हरणकरने और अपना एवं उसका कपटवेष परिवर्तनकी निशिचरी नीति बता रहाहै। पुरोहित कैसा होना चाहिये? श्रीव्यासजीने इसे

महाभारत आदिपर्व अ० १६६ में लिखाहै—

तस्मिन्कर्मणि योक्तव्या दान्तात्मानः पुरोहितः ॥ ७४
वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः ।
धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहितः ॥ ७५ ॥
यस्य स्याद्धर्मविद् वाग्मी पुरोधा शीलवान् शुचिः ॥ ७६॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितः ॥७७॥

राजशास्त्रतो कहताहै कि योग्यपुरोहितको आचार्य और पिता एवं स्वामीवत् माननाचाहिये—

पुरोहितमुदितोदितकुलं शीलं षडङ्गे वेदे—
दैवे निमित्तेदण्डनीत्यां चाभि विनीतमापदां—
दैवमानुषीनामथर्वाभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत ॥
(कौटिल्य अर्थशास्त्र १।६।१५)

उन्नतसेउन्नत कुलमें उत्पन्न, शील और आचारसे सम्पन्न, वेद और व्याकरणादि छओं वेदांगोंके ज्ञाता, दैवीविपत्ति और शकुनशास्त्र का ज्ञाता दण्डनीति कुशल, दैवी और मानुषी विपत्तियोंको अथर्व वेदके मंत्रोंद्वारा हटादेनेके उपाय जाननेवालेको पुरोहित बनाना योग्य है।

तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यं स्वामिनमिव चानिवर्तेत।
(कौ० अ० शा० १।६।१६)

आचार्यको शिष्य, पिताको पुत्र, और स्वामीको सेवक जिसतरह मानताहै, राजाभी इसपुरोहितको इसीतरह पूज्यमाने

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मंत्रि मंत्राभिमंत्रितम् ।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगत शास्त्रिम् ॥
(कौ० अ० १।६।१७)

'इसप्रकार पुरोहितद्वारा बढ़ायाहुआ और मंत्रियोंकी मन्त्रणासेयुक्त, राजवंश सर्वदा बिजयीरहता है । इसका शास्त्रानुसारकर्महीं शस्त्रहोना चाहिये । इसराजबंशको कोई भी पराजितनहींकरसकताहै ।' अतःमंत्रीसे बातछिपानेसे राज-नीतिसे भ्रष्टहुआ और पुरोहितकेसाथ छलकराया इससेधर्मसे भ्रष्टहुआ । इसी नीति एवं धर्मध्वंसकरदेनेके परिणाममें सकुल बिनाशहुआ राज्यभ्रष्टहुआ और निशाचरत्वकी प्राप्तिहुई ।

आगे बर्णनीयप्रसंगमें कपटमुनिके चरित्रज्ञानकी कोई आवश्यकता न रहनेसे शंकरजी या अन्य बक्ताओंने उसकी ऊहापोह नहींकिया । बक्ता किसीकी चर्चा वहींतक करतेहैं जहांतक उसकासम्बन्ध अपेक्षितरहताहै, जैसे रावणको उत्ते-जित करनेके बाद नकटीशूर्पणखाका क्याहुआ ? इसकीखोज किसीवक्ताने अनपेक्षित होनेसे नहींकिया, ऐसेही कालनेमिके भी पूर्वपरिचयसे कोईप्रयोजन न होनेसे चर्चा नहीं की गई । ऐसेही अनेक स्थानों पर अन्यत्रभी जानलेना चाहिये । सहज ही अनुमान किया जा सकताहै कि वह कपटमुनि-राजासमर-सेन अपना राजपाकर राजसुख भोगनेगया होगा ।

(मनसमणि १५ । ६)

* शंका ३० *

ब्राह्मणोंने प्रतापभानुके समस्तपरिवारको राक्षसहोनेका श्राप क्यों दिया ? (मंगलप्रसाद, सगरा)

* समाधान *

परमब्रह्म ब्रह्मण्य हरि गोब्राह्मण हितकारि ।
रामकुमारहिं देत सुख त्रिबिधबेष नितधारि ॥

प्रतापभानुके निमंत्रणमें सभी ब्राह्मण सपरिवार बुलायेगयेथे—

बरे तुरत शत सहस्रबरबिप्र कुटुम्बसमेत ।

अतः सबब्राह्मण सपरिवार जीमनेआयेथे और सबका पद पखारागयाथा, पदपखारना परिवारके साथ २ होताहै—

'पाइकै रजायसु बोलाइ बाल घरनिहिं—

बंदिके चरण चहुँ दिशि बैठे घेरि-घेरि।' (कवि० २।६)

'पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार॥'

'कनक कलश कोपर भरि रूरे। शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे॥
निज कर ताहि राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी॥
लागे पखारन पाँय पंकज···॥'

सब राजपरिवारने मिलकर सभी ब्राह्मणपरिवारोंका पाँव पखारा था—

भोजन कहँ सब बिप्र बोलाये। पद पखारि आसन बैठाये॥

"बोलाये" और "बैठाये" बहुबचनात्मक क्रियायेंहैं क्योंकि सब राजपरिवार कर्ता हैं। जब सब राजपरिवारने मिलकर बुलाया, पदपखारा, बैठाया, तो किसीराजपरिवार के व्यक्ति ने इस दुरभिसन्धिकी सूचना किसीब्राह्मणको क्योंनहींदिया कि रसोईमें मांसभी बनाहै। इससे समस्त परिवारको राक्षसत्वका शापदिया। (मानसमणि १५।११)

* शंका ३१ *

दशशिर ताहि बीस भुजदण्डा।

निशाचराधपति रावणके जन्मकालमें दसशिर यथार्थमें थे या पूर्वकवियोंने कोईदूसराभावलेकर लिखाहै, क्या वैदिक–ग्रन्थोंमें इसविषयका कोई उल्लेखहै, जन्मकालमें रावण के कितने शिरथे? (रामप्रसाद पटेल, डभरा रायपुर)

*** समाधान ***

या वै वेदेषु कथिता त्रिपथगा लोकपाविनी।
सा श्रीरामकथा दिव्या मम त्राणकरी सदा॥

श्रीगोस्वामीजीमहाराजने तो श्रीरामचरितमानसमें रावणके दशशिर और बीसभुजा जन्मकालसेही होनालिखाहै-
कालपाइ मुनिसुनु सोइराजा। भयउ निशाचर सहितसमाजा॥
दशशिर ताहि बीसभुजदण्डा। रावणनाम बीर बरबण्डा॥

आपने वैदिकग्रंथोंकीबात पूँछाहै तो अन्य वैदिकग्रंथों-अर्थात् वेदाधारित ग्रन्थों की कौनबातहै जबकि साक्षात् वेदमें ही रावणके जन्मजात दशशिरोंका वर्णनहै कि रावणके जन्म-कालसेही दशशिरथे। देखिये अथर्ववेद काण्ड चार सूक्त छ मंत्र एक—

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥

प्रथमः = पहलेपहल इसबारकी सृष्टिमें सर्वप्रथम एकऐसा
ब्राह्मणः जज्ञे = ब्राह्मणसन्तान उत्पन्न हुआ जिसके कि
दशशीर्षः दशास्यः = दशशिर और दशमुख था
सः प्रथमः=वहदशानन पहलेतोदेवताओं तथा ऋषियोंसेछीनकर
सोमं पपौ=वेदमंत्रानुष्ठानतपरूप अमृतपिया और फिर
सः आ रसम्=उसनेही उसमंत्रानुष्ठानादि समस्त रसको
विषं चकार।=हलाहल जहर करदिया अर्थात् किसीकोभी वेद-मंत्रानुष्ठानयज्ञ, होमपूजनपाठआदि नहींकरने देताथा।

एकभाष्यकारकाअर्थ ऊपरदियागयाहै। दूसरेएकभाष्य-कार इसमंत्रकाअर्थ निम्नतरहसे करतेहैं—

ब्रह्मणः = ब्रह्मर्षिविश्रवाने अपनी कैकसीनाम्नीपत्नीसे
प्रथमः = पहले-प्रथम संतानके रूपमें
दशशीर्षः दशाऽऽस्यः जज्ञे = दश मस्तक और दशमुख वाला पुत्र उत्पन्न किया।
सः सोमं पपौ = उस दशशिररावणने सोम-अमृत पानकिया अर्थात् उस रावणने योगक्रियासे अपनी नाभिमें अमृतकुण्ड संग्रहीतकियाथा जिससेकि उसने
विषं अरसं चकार। = जहर को अरस निःशक्त करदियाथा अर्थात् बार-बार शिरकटनेपरभी मरता नहीं था।

इस अर्थमें "चकार रसं" की जगह "चकारारसं" पाठहै। मानस में भी इसी अर्थकी पुष्टि है—

'रघुपति शर शिर कटेहु न मरई।'
'नाभि कुण्ड पियूष बसयाके। नाथ जियत रावण बल ताके॥'

इसीतरह त्रिशिरानामकराक्षसके तीनशिर और छःआँखों का जन्मसेहीहोना बेदमें बर्णितहै—

स इद्दासं तु बीरवं पतिर्दन्, षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।
अस्य त्रितोन्वोजसावृधानो, बिपाबराहमयो अग्रयाऽहन्॥
(ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ९९ मंत्र ६)

सः एव = श्रीरामजीने अकेलेही
इद्दासम् = लोकोंको दूषितकरनेवाले 'दूषण' को,
वीरवं दन्पतिः = महाभयंकर स्वर करनेवाले खरको और जो दण्डक बनस्थ दनुजों-दुष्टों का पति-रक्षक या स्वामीथा
षडक्षम् त्रिशीर्षाणम् = ऐसे छःआँख तथातीनशिरवालेत्रिशिराको
दमन्यत्। = मारडाला दमन कर दिया।

श्रीरामजीनेजो त्रिशिरादिको मारडाला तो कौनसी बड़ी-बिचित्र बातहोगई अरे—

अस्य अनु=इनश्रीरामजीके अनुयायीकृपापात्र ऋक्ष बानरोंनेतो

ओजसा वृधानः अयः=बलसे बढ़े हुए अपने लौह मय

त्रित अग्रया=अँगुलीके अग्रभाग - नख से

बराहम्=बराहाकार बिशाल एवं भयंकरराक्षसों को

बिपाअहन्=बिना प्रयासके ही मारडाला।

इसलिये सिद्धहुआ कि अभयचाहने वालोंको श्रीरामजीकी ही शरणलेनी चाहिये।

इसमन्त्रमें यह बतलायागयाहैकि शूर्पणखाको बिरूपित-देखकर जब श्रीराम-लक्ष्मणको मारडालने केलिये त्रिशिरा-खर और दूषण सेनालेकर चढ़आये तब श्रीरामजीने अकेले अनायासही त्रिशिरादि को मारडाला। संभवतः इसीमन्त्रके आधारपर श्रीगोस्वामीजीने मानस में लिखाहै कि—

"करि उपाय रिपु मोर छन महँ कृपा निधाना।"

खरदूषण सुनि लगे गोहारा। छनमहँ सकल कटक उन मारा॥

ऐसे अनेक रामायणीयपात्रोंकाबर्णन बेदकेमन्त्र संहिताओं में प्रचुररूपमें पायाजाताहै, जिनमें कुछका स्थलनिर्देशपूर्वक बर्णन मैंने 'बेदोंमें राम कथा' नामक संग्रहमें कियाहै। जैसे रावणके दशशिर त्रिशिराके तीनशिर खरके गधेका शिर आदि जन्मजात थे। ऐसी-ऐसी अनेक बिचित्रशकलें आजभी ब्रह्माबाबा सप्लाई कियाकरतेहैं जिनका चिट्ठा बराबर पश्चि-मीय वेद (अखबारों) में प्रकाशित होता रहताहै जिनमेंका बहुत कुछ अंश मेरी 'ब्रह्माकी झोली' में संग्रहीतहोता रहताहै

और उस ब्रह्माकीझोलीका एक-एक पर्त (पृष्ठ) आप प्रति मास मानसमणि में 'पुराणोंकी पुनरावृत्ति' नामसे संपादकीय चटपटीटिप्पणीसहित बहुत दिनतक पढ़ा करतेथे। अस्तु

वेदोंने बतलायाहै कि रावणके जन्मसेही दशशिरथे वेदोपबृंहणभूत पुराणोंने बतलाया कि रावणका सर्वांग-उसकी आकृति (हुलिया) कैसी थी।

कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्।
शंकुकर्णं दशग्रीवं पिंगलं रक्तमूर्धजम्॥२५॥
वसुपादं विंशतिभुजं महाकायं महाबलम्।
कालांजननिभं चैव दंष्ट्रिणं रक्तलोचनम्॥२६॥
(स्क० पु० ७ प्रभास खंड अ० २०)

शंकुकर्णो दशग्रीवः पिंगलो रक्तमूर्धजः।
चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबलः॥
जात्याञ्जननिभो दंष्ट्री लोहितग्रीव एव च॥
(वायु पु० ७०।४२, ४३)

इसके अतिरिक्त यहभी बतलायाकि ब्रह्मा और शिवकी आराधना (तप) करके रावणने ऐसीशक्ति प्राप्तकरलीथी कि जबजैसाचाहताथा तब वैसारूप बनालेताथा जिसमें कभी नौशिरोंको छिपाभी लेताथा और एकशिरही लोगोंको दिखाई पड़ताथा, कभी नहींछिपाताथा। बालमीकीयरामायण तथा कतिपय पुराणोंसे पताचलताहैकि स्त्रियोंके बीचमें रावण अपने नौशिरोंको छिपालेताथा केवल एकशिरही प्रगटरखता था, परन्तु सभा एवं युद्धक्षेत्रादिमें दशोंशिरोंको प्रत्यक्ष रखता था। दशोंशिर उसके जन्मजातथे, परन्तु जिन लेखकोंने वेदों

एवं पुराणोंको नहींदेखाथा उन कईकवियोंने अपने-अपने विभिन्न रामायणीयनिबन्धों-ग्रन्थोंमें रावणके दशशिर हो-जानेकी अनेक कल्पनायें की हैं, पर कल्पनातो कल्पनाही उसका मूल्य कितना। (मानसमणि १३।१०

* शंका ३२ *

'रावणमरण मनुजकर याँचा।' 'नरकेकर आपन बध बाँची॥
हम काहूके मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥

रावणने केवल अपनीमृत्यु नरबानरके कर माँगीथी। तो सबराक्षसक्यों मारेगये ? अतः मनु-ज मनुपुत्र दशरथपुत्र जाति=रंग। दोउ=श्यामगौर रामलक्ष्मण। ऐसा अर्थ करनेसे क्या संगतिनहीं बैठती ? (पोषणदास मुँगेर)

* समाधान *

नर तनु धरि हति राक्षसनि लंक बिभीषण दीन्ह।
कीन्ह अभय सुरमुनिमनुज, शरण कुमारहु लीन्ह॥

वैयाकरणिक नियमानुसार हिन्दीभाषामें 'हम' शब्द का प्रयोग बहुबचनमें होता है। रावणके 'हम' कहनेसे मालूम होताहै कि वह अपनेसे संबधित सारेपरिवार=राक्षसबर्गके लिये बरदान माँगरहाहै। अर्थात् 'हम' सपरिवारराक्षसबर्ग-सहित बानर और मनुष्य इन दो जातियोंके अतिरिक्त अन्य किसीके हाथसे न मरें। तात्पर्य कोई नरके हाथ मेरे कोई बानर से मारा जाय। स्मरण रहेकि 'चतुर्लक्षं तु बानराः' इस स्मार्तप्रमाणानुसार रीछ-भालुभी बानरजातिमेंहीहैं। उपर्युक्त प्रकारसे समझनेपर शंकाकेलिये स्थानहीनहींरहता।

वानर और मनु-ज की क्लिष्ट कल्पनाभी नहीं करनीपड़ती। पुनः वैसी क्लिष्टकल्पना करनेपरभीतो अर्थकीसंगति नहीं बैठतीहै। क्योंकि रावणको तो अकेले श्रीरामजीनेही माराहै न कि दोनोंभाइयोंने मिलकर रावणपरप्रहार किया है।

(मानसमणि ५।१२)

* शंका ३३ *

कौशल्याजी दक्षिणकोशल रतनपुर छत्तीसगढ़की बेटीथीं, और कैकेयीजी केकयदेश काकेशिया कोहकाफ़ या कश्मीर की बेटीथीं। यह सब जानतेहैं। पर सुमित्राजीका मायका कहाँ था? कुछलोग कहतेहैंकि सुमित्राजीतो कौशल्याजीकी सगी सहोदरा बहिनथीं परन्तु कोईप्रमाण नहींदेते। प्रामाणिकरूपसे सुमित्राजीका मायका कहाँथा ? (महान्त रघुबरदासजी,)

* समाधान *

मातु सुमित्रा नाम नित जपहिं जे तिय उरधार।
पतिपद प्रीतिप्रतीतिलह गुणनिधि युगलकुमार॥

अन्यत्रको तो मैं ठीकसे नहींजानता परन्तु अयोध्याजी के समीपवर्ती ग्रामोंमें और जहाँकी कन्या श्रीसुमित्राजीथीं उस मगधमें भी जेठानी और बड़ीसवतिकोभी "जीजी" कहने की प्रथा आजभी है। कबितावलीमें सुमित्राजीके मुखसे कौशल्याजीको 'जीजी" कहना पढ़कर कुछलोग अपनी अज्ञता-अनभिज्ञताका परिचय देतेहुए सुमित्राजी को कौशल्याजीकी छोटी एवं सहोदराबहिन कहदिया करतेथे और आजभी—

अन्धेन नीयमाना यथाऽन्धा।
(मुंडक १।२।८ मैत्रा० ७।६)

न्यायानुसार उन्हींकी परिपाटीपर चलने वाले भोले-भाले अज्ञलोग वैसाही कहते एवं मानतेहैं। जहाँ सुमित्राने "जीजी" कहाहै वहीं कौशल्याने सुमित्राको सखीकहाहै और 'सखी' सहेली, देवरानी किंवा सवतिमात्रकोतो कहा जासकता है परसहोदरा बहिनको सखी नहीं कहाजाता। कौशल्याजीका प्राकट्यप्रदेश दक्षिणकौशल आजका महाकौशल-छत्तीसगढ़ का रत्नपुर या नागपुरथा और सुमित्राजीका मायका-प्राकट्य प्रदेश मगध बिहारथा इसीसे पद्मपुराणादिमें उन्हें मागधी मगधेशसुता कहाहै। एकाधप्रमाण देखिये—

१ मागधस्य नृपस्याथ तनया च शुचिस्मिता।
सुमित्रानाम नाम्ना च तृतीया तस्य भामिनी॥
(पद्मपुराण उत्तर खण्ड २४२।३८)

२—अथ लक्ष्मणमालयं गुणानामनु-शत्रुघ्नमसूत मागधी च।
(अभिनन्दकृत रामचरितम् ८।६३)

३—मगधराजसुतां सुमित्रां कृतार्थयामासतुः।
(रामकथा गद्य माला)

४—बिवाहेनाकरोत् पत्नी सुमित्रां मगधेशजाम्।
(आनन्द रामायण सार कांड १)

५—मगधकेकयकोशलशाशिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम्॥
(रघुवंश ९। १७)

बिशेष आवश्यकता पड़नेपर यहसूची औरभी बढ़ाई जासकती है। (अवधसंदेश वर्ष ५ अंक २)

* शंका ३४ *

हवि बाँटनेमें दशरथजीने पक्षपात क्यों किया ? अर्थात् मझलीरानी सुमित्राको छोटीरानी कैकेयीकेबाद हवि देकर अन्याय क्यों किया ? (पं०रामकुमार उपाध्याय रामायणाचार्य)

* समाधान *

अजपुत्रनमस्तुभ्यमजतात नमोऽस्तुते ।
कौशलपते नमस्तुभ्यं कौशल्यापतये नमः ॥

(क) हविर्वितरणमें दशरथजी स्वतंत्र नहींथे अपितु यज्ञ में प्रगटहुए अग्निदेवने जैसा बतायाथा वैसेविभक्त करदिया। अतः उसमें किसीकेसाथ पक्षपात या अन्याय नहींहुआ। अग्निदेवने कहाकि—

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। यथा योग्य जेहि भाग बनाई॥

परन्तु इससे भाग बनानेका स्पष्टीकरण नहींहुआ तो—

तब अदृश्य पावक भये सकल सभहिं समुझाइ।

क्या समझाया ? यह बाँटनेकी क्रियाद्वारा स्पष्टहुआ। अग्निदेवने सकलसभाके सामने समझायाथा। इसीकारण विचित्र बँटवारेपर न रानियोंने ननुनच किया और न किसी सभ्य-सभासदने पक्षपात और अन्याय कहा।

(ख) बाल्मीकीयरामायण आरण्यकाण्डके सोलहवें सर्ग में वर्णितहै कि पंचवटीमें एकदिन प्रातःकाल श्रीभरतजीकी भूरिभूरि प्रशंसा करतेहुए श्रीलक्ष्मणजीने माता श्रीकैकेयीजी के सम्बन्धमें कहदिया कि—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतःसुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३५॥

इसपर श्रीरामजीने कहा कि तुम्हें कभीभी मझलीमाताकी गर्हणा नहीं करनीचाहिये अतः केवल इक्ष्वाकुकुलभूषण, भरतलालकीही चर्चाकरो—

१- न तेऽम्बामध्यमा तात गर्हितव्या कथंचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३७॥

वेदमें श्रीलक्ष्मणजी को तीसरी माता का पुत्र और भाइयों में तीसरा कहा है—

२- अभियाति तृतीयम्०। (ऋग्वेद १०।१।३)

३- तिस्रोमातॄस्त्रीन् पितॄन बिभ्रदेकः। (ऋ १।१६४।१० अथर्व ६।६।१०)

पूरेमन्त्र और उनकेअन्वयार्थ मेरीपुस्तक "वेदोंमेंरामकथा" के पृष्ठ ६६–७२ तकमें देखिये।)

४- अथरघुकुलराजो मध्यमाम्बा नियोगात।
गुणवति परिधाने मंगलार्हे निराशः॥
(भोजकृत चम्पूरामायण २। ३८)

५- मागधस्य नृपस्याथ तनया च शुचिस्मिता।
सुमित्रानाम नाम्ना च तृतीया तस्य भामिनी॥
(पद्मपुराण (पूना) उत्तरखण्ड २६६। ३६)

६—प्रविश्य, लक्ष्मणः—
इयमार्याया मंथरोपनीतामध्यमाम्बायाः।
(अनर्घराघव नाटक अंक ४। श्लो० ६५ के बाद)

७—मध्यमायाः प्रियसखी मातुर्नो मंथरेति या।
(महावीरचरितम ४। ४०)

८—योऽसौ वरद्वयन्यासम्तं मातामेऽद्यमध्यमा।
(महावीरचरितम् ४। ४७)

९—लक्ष्मणः विहस्य स्वगतम्-अये ! मध्यमाम्बा [कैकेय्याः]वृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण[उत्तररामचरितम् १।२१]

महाकवि मल्लाचार्यजी (१२वीं शताब्दी) कृत-उदार राघव में लिखा है—

१० कौशल्यया रंस्त कलापकेश्या,
केलिं व्यधात् केकयराजपुत्र्या ।
सुमित्रया सर्व सुखानि भेजे,
करीव रेजे स्ववशासु तासु ॥ (उदार राघव १।३२)

११-यथाध्यवात्सीदपिमध्यमाम्बा ॥ [उदा० रा० ४।७]८
१२-न मध्यमाम्बा मम कैकयीयं
भारं निषेधत्यत उत्तमाम्बा ॥ [उदा० रा० ४।११६]
१३-काम्बा कनीयस्यपि सा सुमित्रा [उदा० रा० ४। १२१]

१४-तेरहवीं शताब्दीमें महाकवि पं० श्रीकृत्तवासजीने-भी अपनी सप्तकाण्डीय कृत्तवासीय बँगला रामायणमें श्री-कैकेयीजी के बादही श्रीसुमित्राजीकाव्याह लिखाहै-

कौशल्या कैकेयी येई सपत्नी उभय।
उभयलइया क्रीड़ाकरे महाशय ॥
राज्यो ये सुमित्रमहीपति । सुमित्रातनया ताँर अति रूपवति ॥
सुनियाकन्यारकथा हृष्टदशरथ । हइतेसुमित्रापतिछिलेमनोरथ॥
कौशल्याकैकेयी नहिजानेदुइजन । मृगयारछले राजाकरिलगमन॥
सुमित्राविवाहे राजा आसेनिजदेशे, अन्तःपुरेप्रतिपले मनेरहरषे
कौशल्याकैकेयीराज्यरानीदुइजन, सुमित्रारूप देखिभावेमनमन

वेदातिरिक्त देवभाषाकी सबसे प्राचीन बाल्मीकीयरामा-यणमें श्रीकैकेयीजीको मध्यमारानी बतलायागया है। पुराणों,

चम्पू और नाटकोंनेभी आदिकाव्यकाही अनुसरण कियाहै। भारतीय नरभाषाकी प्राप्य सबसेप्राचीनरामायण बँगला कृत्तवासमें तो श्रीकैकेयीजीके बाद श्रीसुमित्राजीका व्याह बड़े बिस्तारसे लिखाहै। श्रीगोस्वामीजीने तो अपने सभीग्रन्थोंमें श्रीकैकेयीजी के बादही श्रीसुमित्राजीका स्थानदिया ही है। बर्तमानसमयमें खड़ीबोली का सर्वमान्य महाकाव्य साकेतमें बार बार श्रीकैकेयीको मझलीमाँ ही कहाहै-

१५-कि मझलीमाँ हमें वनभेजतीहैं। भरतके अर्थराज्य सहेजतीहैं ।। (सर्ग ३ ,

१६-मझलीमाँ पर कोप करूँ। पुत्रधर्मका लोपकरू ।। [सर्ग ४]

गोस्वामीजीने भी प्रायः कैकेयीजीके बादही सुमित्राजीका स्मरण किया है। एकाध प्रमाण देखिए। गीतावली १।७

१७-यों प्रसन्न कैकेयी सुमित्रहिं होहु महेश भवानी।

१८-केकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दरसुत जन्मत भईं ओऊ॥

आदि। तब आपने हर्षविवितरणमें श्रीदशरथजीको न्याय विरोधी किस आधारपर कहा ? यह आपही जानें।

(साप्ताहिक बिरक्त १८।६।६१

* शंका ३५ *

परशुरामजी अंशावतार मानेजातेहैं तथा रावणको जीतने वाला सहस्रार्जुनके मारनेवाले होकरभी आपरावणकेउपद्रवसे जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गांव पुर आग लगावहिं

जप जोग बिरागा......तेहि बहुबिधि
त्रासै देस निकासै जो कह वेद पुराना।

दुखी नहींथे तोक्यों ? थे. तो कुछउपाय क्योंनहींकिये ?

(चन्द्रिकाप्रसाद मालगुजार)

* समाधान *

गौरीं सुवर्णमणिभूषणभूषिताङ्गीं,
बालां विलोलनयनां नयनाभिरामम् ।
कामप्रदां कमलचर्चितपादपद्मां
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम् ॥

सभी अवतारोंका अपनेप्रत्येक कार्योंकेलिये अपना एक-नियमहोताहै । दुष्टदलन प्रत्येकअवतारोंमें विभिन्नरूपेणहोता रहा । यहभी एकनियम सार्वत्रिक था कि दुष्ट यातो उन्हेंस्वयं छेड़तेथे तब मारेजातेथे और या कोईदुखी उनकेपासजाकर उन्हें अपनीदुखगाथा सुनाताथा तब दुष्टमारेजातेथे । जैसे ताड़कादिसेपीड़ित महर्षि श्रीबिश्वामित्रजीने जब श्रीरामजीसे जाकर अपनी दुखगाथासुनाया तब दुष्टदलनहुआ जब यमुना तीरवासी ऋषिलोग अयोध्याजाकर श्रीरामजीसे राक्षसलवण-का अत्याचार सुनाये तब श्रीरामजीने शत्रुघ्नजीको भेजकर लवणका वधकराया । और विराध, खरदूषण, कबंध और रावणादिने जब स्वयं जाकर श्रीरामजीकेसाथ छेड़खानीकिया तो मारेगये । भौमासुर आदिसे पीड़ितलोगोंने जब भगवान् श्रीकृष्णजीसे अपनी दुःखगाथा सुनाया तो भौमादि भगवान् से मारेगये और कंससे प्रेरित अनेकराक्षस, जरासंध काल-यमन, शिशुपाल और सौभनरेशशाल्वादिकोंने जब स्वयं भग-वान् श्रीकृष्णजीसे छेड़छाड़किया तब उनका दमन कियागया ।

श्रीपरशुरामजीके पास कभी कोई गुहार-फरियाद लेकर गयाहो और उससमय श्रीपरशुरामजीने दुष्टदलन न कियाहो ऐसा कोईप्रमाण नहींपायाजाता और जिनदुष्टोंने स्वयं जा-

जाकर उनसे छेड़खानीकिया वे मारेगये इसे श्रीपरशुरामजी स्वयंही कहतेहैं कि—

समधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भये पशु आई॥

यहाँका "आई" शब्दही बतलारहाहै कि जिसतरह सम्राट् जन्मेजयके सर्पेष्टियज्ञमें महर्षि उतङ्कके मंत्रके प्रभावसे अनेक स्थानों से आ आ कर सर्प उनके अग्निकुण्डमें गिरकर भस्म होतेथे। वहाँ कोईसपेरा सर्पपकड़कर लानेकेलिये नियत नहीं था। वैसे कालसे प्रेरित बड़ेबड़े दुष्ट राजालोग महामहीप स्वयं जाजाकर श्रीपरशुरामजीसे छेड़खानी करतेथे और ससैन्य-मारेजातेथे। यदि ऐसा न होता तो- भये पशु आई। न कह-कर "किये पशु लाई।" कहते।

निष्कर्ष यहकि रावणादिसे जोलोग पीड़ितथे उनमेसे किसीने कभीभी परशुरामजीसे अपनी दुखगाथा सुनाकर कोई सहायता नहींचाहा और रावणादिने भी कभीभी श्रीपरशुराम-जीसे छेड़खानी नहींकिया इससे श्रीपरशुरामजीने नतो उन्हें माराही और न उनके सुधारकाही कुछउपाय किया।

(मानसमर्मज्ञ ७। ५)

* शंका ३६ *

दोहा—निज लोकहि बिरंचि गे देवन इहै सिखाय।
बानर तनु धरि धरनि महँ हरिपद सेवहु जाय॥

इस दोहे में यह शंका होती है कि 'सुरमुनि गंधर्वा मिल-करि सर्वा गे बिरंचि के लोका'। के अनुसार सब देवता ब्रह्मा के लोक में गये थे और जिस समय का यह कथनहै उस समय ब्रह्माजी भी अपने ही लोक में थे। फिर गोस्वामीजीने निज लोकहि बिरंचि गे' ऐसा क्यों कहा ?

एकसज्जन इसकेविषय में लिखतेहैं 'यह तो प्रत्यक्षहै कि यह घटना ब्रह्मलोक की है अतएव दोहेमें यह कहना कि ब्रह्मा अपनेलोकको गए अवश्यही असंगतप्रतीत होताहै। हमारा अनुमानहै कि 'लो, के ऊपर एक बिन्दुथा वह लेखकके प्रमाद से खो गया। बिन्दु धरदेनेसे 'लो, का लों, होजायगा और अर्थहोगा ब्रह्माजीने अपनेलियेभी कहाकि मैंभी चलकर बनचर बनता हूँ तुम लोगभी धरनिमेंचलो भगवानके चरणोंकी सेवा करनेको मिलेगी इसका परिणामभी यही हुआ। पुराणों से प्रगटहोताहै कि ब्रह्माजी जामवन्तबनेथे और बनमें रामजी के मंत्रीकाकाम करतेथे। अन्य देवताओंके लियेभी इसीप्रकार कहागयाहै' अस्तु हमने 'निज लोकहिं बिरंचि गे' इस पदको निज 'लों, कहि बिरंचि गे' कर दिया है।' परमुझे इससे पूर्ण-समाधान नहींहोता क्या उक्तकथनानुसार 'निज लों कहि बिरंचि गे' पाठ शुद्ध है? पं० शालग्राम तिवारी सागर

* समाधान *

जय लक्ष्मण सिय राम जय, रिपुहन भरत उदार।
जय गिरीश गिरिजा गणप जय अञ्जनी 'कुमार'॥

आज दुर्भाग्यवश श्रीगोस्वामीजीकी कोईभीरचना गोस्वामीजीके हस्ताक्षररूपमें नहींमिलती परन्तु श्रीगोस्वामीजीके हाथकीलिखी बाल्मीकीय रामायणके युद्धकांड और काशीनिवासी टोडरमलके पुत्रोंके बँटवारेकेसमय प्रधाननिर्णायकके रूपमें श्रीगोस्वामीजीके हाथका लिखापंचनामा मिलता है, बस। एक पुरानीप्रति श्रीअयोध्याजी श्रावणकुञ्जमें बाल-काण्डमात्र सं० १६६१ वि० श्रीभगवानदीनब्राह्मणके हाथकी

लिखीहै। उसमेंभी 'निज लोकहिं' ही पाठहै। आजतक जितनी प्राचीनसेप्राचीन प्रति सामने आई सबमें यहीपाठहै। किसीभी प्रतिमें हो लों कहि" पाठ नहीं है। अतः शुद्धपाठकी दृष्टिसे 'निज लोंकहि' पाठ ठीकनहींहै लो, पर अनुस्वार छूटना लेखक-प्रमाद नहींहै। अर्थकी दृष्टिसे भी 'लों-कहि' पाठ ठीकनहीं क्योंकि आप श्रीतिवारीजीके उत्तर्कानुसार अर्थमान-लेनेपर भी 'गये' शब्दकी गवेषणा रहही जातीहै अर्थात् जैसे कहाजायकि अमुक व्यक्तिस्वस्थ होगया तो इसकातात्पर्य ही होताहैकि वह पहिले बीमारथा अब स्वस्थ हो गया इसी तरह 'वह व्यक्ति गया' इस कहनेसे स्पष्टहै कि 'आयाथा' तब तो 'गया' ऐसे ही जब 'गये देव सब निज निज धामा।' और 'निज लोकहिं बिरंचि गये।' तो बिरंचि कहाँ गये? जबकि अपनेही धाममेंथे। अतः दोहेका 'गये' शब्द कहही रहाहै कि ब्रह्माजीभी अपने लोकसे कहीं और जाकर स्तुति कियेथे। तब तो आकाशबाणीद्वारा आज्ञा और आश्वासनपाकर सब अपने स्थान पर गये। कहाँजाकरस्तुतिकियेथे? तो उसस्थान का पता मानसके उसीप्रसंगमें किंचित परोक्षता लियेहुए बर्णित है। प्रतिबादरूपसे भलेही कहींकहीं श्रीब्रह्माजीको—

'जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः॥' कु०सं०२।९

कहदिया गयाहै अन्यथा सर्वत्र सद्ग्रंथोंमें एकस्वरसे भगवानशंकरजीको चतुराननब्रह्मासे बड़ाही बतलायागयाहै। श्रीगोस्वामीजीने भी अपने ग्रंथोंमें सर्वत्र श्रीशंकरजीको ब्रह्माजी से बड़ाही बतलायाहै अतः अपनी किसी आवश्यकताबश या

किसीकी सिफारिशलेकर शंकरजीका चतुराननके पास सहायताकेलिये जाना नहीं मिलता और आवश्यकता पड़नेपर पितामहादि सबदेवतोंका भगवान् श्रीशंकरजीके पास जाना पायाजाता है।

सब सुर बिष्णु विरंचि समेता। गये जहाँ शिव कृपा निकेता।

आदि। पुनः रावन के डर से 'सुरपुर नितहिं परावन होई॥ और देवतालोग भागकर सुमेरुकी कन्दराओंमें आश्रय लियाकरते थे। 'देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा।' मेरुगिरिकी खोहोंमें मुनिलोग तो स्वाभाविकरूपसे ही रहाकरतेथे. देवतालोग अधिकतर मेरुगिरिकी खोहोंमें ही छिपे रहतेथे। इसीसे तो दिक्पालादि सभी देवतोंके लोकोंको जब। 'सूने सवल दशानन पाये।' तभीतो रावनने ऐसाउपायरचा कि इसउपाय से बिनाखोजे ढूंढ़ेही—

छुधा छीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आइ। अस्तु—

इसीसे जैसे सुरमुनिगंधर्वादिका सीधे विरंचिके लोक जानाकहा; वैसे पृथ्वीका सीधेदेवलोक जाना नहीं कहा क्योंकि देवगणतो मुनियोंके तपः स्थान मेरुगिरिकी कन्दराओंमें छिपे थे। वहकन्दरा कोई एकही एवं नियत तो होही नहींसकतीथी इसीसे पृथ्वी—

धेनु रूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जहँ सुरमुनि झारी॥

और तबवहाँसे एकत्रहोकर'मिलिकरसबा गे विरंचिके लोका।' इतनातो स्पष्टही लिखाहै। और इसकेबाद परलोकवासी प्रोफेसर श्रीरामदासजीगौड़के शब्दोंमें—

'ब्रह्माजीने जब अनुमानकरलिया कि मोरिहु कछु न

बसाई,' मेराभी कोईबस नहींहै तब आगे उनका कर्तव्य क्या-रहा ? बेबसीकीबात यह थी कि ब्रह्मा और शिवनेही मिलकर तोरावणको वरदान दियाथा।

देवताओंकी मंडलीमें-जो ब्रह्मलोक पहुँचीथी-भगवान शंकरकी चर्चा नहींहै । परन्तु जब देवतालोग कहीं बैठकर विचार करतेहैंतो भगवान्शंकर कहतेहै कि 'तेहि समाज गिरिजा मैं रहऊँ।' यहाँ अपना उससमाजमें उपस्थित रहना पहिलेपहल कहतेहैं । कथा कहनेवाले स्वयं ठहरे । अन्तमें ब्रह्मादिदेवताओंका अपने अपने धामको जानाभी कहतेहैं— 'गये देव सब निजनिज धामा।' परन्तु अपनेजाने वा अपने स्थानको चलेआने की कोईचर्चा नहींकरते । प्रसंगसे स्पष्टहो जाताहै कि भगवान् शंकर उससमाजमें थे और अपनेही स्थानपर थे इसीलिये न आनेकी चर्चाकी न जानेकी। समाज में उपस्थितरहने मात्रकी चर्चा स्पष्ट कहेदेतीहै कि यहदेवसभा शिवलोकमें हुईथी । प्रसंग और ध्वनिसे ही घटनास्थलकी सूचनादेना कवित्वका अपूर्व चमत्कार है ? साथही यह कोम-लता ध्यान देनेयोग्यहै कि भगवान् शंकर स्वयंकथाकहतेहैं, अपनी महत्तासूचक किसीघटनाका वर्णन विशेषतः अपने इष्टदेवकी चर्चाकेसाथ विनय और शिष्टाचारके विरुद्धहै। भगवान्शंकरतो उससभाके प्रमुखोंमेंसे हैं, उन्हीकेपास लोग दुहाईदेनेगये हैं । परन्तु शालीनता और नम्रताकीहदहै कहतेहैं कि—

तेहिसमाज गिरिजा मैंरहेऊं। अवसरपाइ बचन एककहेउं ॥
मोरबचन सबके मनमाना। साधुसाधु कहि ब्रह्म बखाना ॥

बात सबको भागई। विनयपूर्वक कहनेका कैसा उत्तमढंग है। वास्तवमें भगवान शंकरका फैसलाथा कि काम यों होना चाहिये। स्वभावत: ब्रह्माजी अगुआ हुये. जिनकी सृष्टिथी, जिसकीरक्षा उन्हें इष्टथी पर उनकेहाथमें न थी। आकाशवाणी के बाद सभा विसर्जितहुई। भगवान् शंकररहगये। सब चले-गये।' (मानसपीयूष से)

रावणके डरसे ब्रह्मा और शंकरजीके कभी कहींभागनेका उल्लेख नहींपायाजाता। रावण कदाचित् प्रपितामहके नाते ब्रह्माजीका अदब करतारहाहोगा और शंकरजीका कुछकुछ आतंक मानताथा। इसीसे देवादि ब्रह्मलोक गये और ब्रह्मा सबकोलेकर शिवजीके पास गयेथे। रावणसे पीड़ितपृथ्वी और देवताओंको साथलेकर ब्रह्माजी कैलासगयेथे। इसका प्रमाण देखिये–कलकत्ता मोरसंस्करण पद्मपुराण पातालखण्ड

क्षणं ध्यात्वा ययौ ब्रह्मा कैलासं त्रिदशैः सह ॥ ७। १८।

इसीअध्यायमें देवस्तुति और आकाशवाणीद्वारादशरथके घर चाररूपसेप्रगट होनेकी बात विस्तारसेहै। और जामवन्तजी ब्रह्माके अंशसेथेसही पर जामवन्तकाअवतार रावणजन्मसे बहुतपहिलेही स्वरोचिषमन्वन्तरमें होचुकाथा। स्वरोचिष–मन्वन्तरमें ही श्रीवामनभगवान् प्रगटहोकर त्रिविक्रमहुयेथे। उससमय जामवन्तपूर्ण युवाथे—

जबहि त्रिविक्रम भयउखरारी। तब मैं तरुण रहेउं बल भारी॥

अत: यहाँ निजलों कहि पाठरखकर आपका बतायाअर्थ मुझे प्रसंगोपात्त नहींजँचता और वह निजलों कहि आपकी नवीनकल्पना नहींहै। मानस पीयूषमें पादटिप्पणीमें वैक-

लिपकरूपसे वैसाअर्थ कियाहै और चित्रकूटी पं० श्रीराम-अधीनजी रामायणीने भी अपने गूढ़ार्थप्रकाशमें उसीको पुष्ट-किया है। जिसअर्थ को आपने श्रेय दिया है । परन्तु वह लों वाला काल्पनिकअर्थ मेरे मस्तिष्कमें नहींबैठता; हृदय को नहीं जँचता, क्या करूं—'मुण्डेमुण्डे मतिर्भिन्ना।'

जिन लोगोंनेकिसी पुराणका विचारपूर्वक पाठ नहीं किया-मन्थन नहींकियाहै परन्तु अपने पौराणिकहोनेका सीमातीतगर्व रखतेहैं वेकेवल सुनीहुई किम्बदन्तियोंको आधार बनाकर कहदेतेहैं कि अमुकपुराणमेंहै कि 'ब्रह्माका सभाभवन अलगहै और वहीं देवस्तुतिहुई, आकाशबाणीसुनीगई आदि।' परन्तु आजतक किसीभी पौराणिकम्मन्यने इसकथनकी पुष्टिमें प्राप्य सत्पुराणका उद्धरण उपस्थित नहीं किया । कैलासमें जानेकाप्रमाणतो ऊपरमैंने उद्धृतकरदिया । पूरा प्रसंग प० पु० पाताल खं० अ० ७ में देखनाचाहिये। हाँ मोर संस्करणमें सातवां अध्यायहै और साँचीबम्बईसंस्करणमें छठवां अध्याय है। पद्मपुराण अप्राप्यनहींहै। (मानसमणि ५।६

* शंका ३७ *

कबिवर तुलसीदासजीने ऐसा क्यों लिखा कि—

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमणि चले करत गुणगाना॥

जब सूर्य स्थिर है और पृथ्वी चलती है तब सूर्य का चलना क्यों लिखा। (उमादत्तोपाध्याय बी० ए०)

* समाधान *

श्रीसियको शुचिबीन सदा मम मानसमें झनकार सुनावैं।
जोसुनि लागत फीक अनाहत नादहु ना जेहिकी सरिआवैं॥

मों हियतारपै श्रीसियजू अँगुरीन टँकारि सुभाव जगावैं।
ऐसो महाकरुणामयि माय सुभावैं 'कुमार' सोई कछु गावैं॥

आज अनेक बिद्वानोंने इसतथ्यको स्वीकारकरलियाहै कि ज्योतिष की बहुत सी बातों का आदानप्रदान भारतका यूनानके साथहुआहै सम्राट बिक्रमार्कसे लगभग चारसौबर्ष-पूर्व यूनानीबीर अलेक्जेण्डर सिकन्दर भारतबिजयके लिये आयाथा, यद्यपिवह सफलहोकरनहींगया तो भी सल्यूकस नामक सिकन्दरके सेनापति की लड़की हेलनका ब्याह सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यसे होनेकेकारण भारत और यूनानका पारस्परिक सम्बन्धबनारहा, सल्यूकसका प्रतिनिधिमेगस्थनीज तो भारतमेंहीरहताथा। उन्हींदिनों यूनानकी अनेकबातेंभारतमें आईं उन्हींमें पृथ्वीका घूमना और सूर्यका स्थिररहनाभीथा।

सम्राट् चन्द्रगुप्तके लगभग चारसौ बर्षबाद भारतसम्राट् बीरबिक्रमादित्यके एकसभापंडित आर्यभट्टने यूनानीबिद्वान् 'पैथागोरास' के दिमागीसिद्धांत भूभ्रमणको आर्यभट्टीयनामक अपनेग्रंथके १२० श्लोकोंमें प्रतिपादितकिया। उसीसमय बिक्रमार्कके नौरत्नसभाके सभापति महापण्डित बराहमिहिर ने प्रश्नकिया कि—

१—भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यवदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या न खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः॥ ६॥

२—अन्यच्च भवेद्भूमेरह्ना भ्रमरहसाध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात् प्रेरणमथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति ॥ ७॥

३—यदि च भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झितः निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि॥४२

४—पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजेद् घनः ।
अथ मन्दगमात्तदा भवेत् कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥४३॥
(शि० वृ० गो०)

अर्थ १—जो यहकहतेहैं कि पृथ्वीहीघूमती है भपंजर नहीं घूमता तो इनसे हमारा यहप्रश्नहै कि ऐसाहोनेपर पक्षी अपने-घोसलोंमें नहीं आसकेंगे ॥ ६ ॥

२—यदि पृथ्वी तीव्रवेगसे पूर्वाभिमुखी भ्रमणकरतीहै तो ध्वजापताका पृथ्वीके वेगसे सर्वदा पश्चिमकीही तरफको उड़ेगी और यदि पृथ्वी मंदवेगसे पूर्वको चलतीहै तो ऐसी दशामें चौबीस घण्टेंमें पूर्ण भ्रमण नहीं होसकेगा ॥ ७॥

३—यदि पृथ्वी चलतीहै तो फिर पक्षी अपनेघोंसलेमें नहीं ही पहुंचसकेंगे और आकाशका फेंकाहुआ बाण पश्चिम में गिरेगा ॥ ४२ ॥

४—यदिपृथ्वीपूर्वाभिमुख घूमतीहै तो फिरबादलहमेशा पश्चिम को जायेगा और यदिकहोकि पृथ्वी धीरेधीरेचलतीहै इस कारण बादलपश्चिमको नहीं जाते तो ऐसी मंदगतिसे एक दिवसमें पृथ्वी का भ्रमणकैसे पूराहोगा ॥ ४३ ॥

(ये चारों श्लोक अर्थसहित 'पुराण वर्म' से लियेगयेहैं विशेष व्याख्या जिज्ञासुओं को वहीं देखनीचाहिये ।)

इन चारोंश्लोकोंमें भूभ्रमणवादियोंके सिद्धान्तमें पाँच दोष दिखलायेहैं ।

१—हमेशा वायुकाजोरसे चलतेरहना । २— बड़े जोरके साथ ध्वजा पताकाओं का सर्वदा पश्चिम को उड़ना । ३—बादलोंका पश्चिमको जाना ।४-बाणका पश्चिमका गिरना

५—पक्षियोंको अपना घोंसला न मिलना।

इन पाँचों दोषोंकापरिहार उससमय आर्यभट्ट या उनके कोईभी अनुयायी नहीं कर पायेथे-और आजभी वे प्रश्न ज्योंके त्यों बनेहैं। अनेकसम्मान्य ज्योतिर्विदोंने पृथ्वीको अचला और सूर्यको भ्रमणशील मानाहै, दैवज्ञ शिरोमणिवराहमिहिर काप्रमाण तो ऊपर देखाही जाचुकाहै, भास्कराचायका लेख देखिये—

यथोष्णतार्कानलयोश्च, शीतताविधौ, द्रुतिःके. कटिनत्वमश्मनि मरुच्चलो भूरचलास्वभावतो यतोविचित्रा बत वस्तु शक्तयः॥५

(सिद्धांत शिरोमणि गोलाध्याय)

अर्थ –जैसे सूर्य और अग्निमें उष्णता, चन्द्रमामेंशीतलता जलमें गति, पाषाणमें कठिनता स्वभावसेहीहै वैसेही पृथ्वी स्वभावसेही अचलाहै, क्योंकि वस्तुओंकी शक्तियाँ विचित्रहैं।

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्येभ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा॥ ३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य शुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमंत्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधराघनाः॥ ३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥३२॥

(सूर्य सिद्धान्त अध्याय १२)

अर्थ—ब्रह्माण्डके मध्यमें जो परिधिहै उसे आकाशकक्षा कहतेहैं, उसके मध्यमें नक्षत्रमण्डलकाभ्रमणहोताहै, उसकेनीचे क्रमशः शनि, बृहस्पति मंगल, सूर्य, शुक्र बुध और चन्द्र एककेनीचे एक अपनीअपनीमध्यकक्षामें भ्रमणकरतेहैं उसके

नीचे सिद्ध, विद्याधर एवं मेघहैं और चारोंओरसे बीचोबीच ब्रह्माण्डके मध्यकेन्द्रमें परब्रह्मपरमात्माकी धारणशक्तिसे सबको धारणकियेहुये आकाशमें भूगोल सर्वतोभावसे स्थित है

वैदिकमतावलंबी ज्योर्विदोंने तो पृथ्वीको अचलाही माना है पर जिनपर यूनानीमतकी छापपड़ीथी वे यदाकदा लिखते रहेकि पृथ्वी घूमती है सूर्य स्थिर है और आज लगभग सौ वर्षसे तोविदेशी शिक्षाकाही बोलबाला है और अब स्वतन्त्र भारतमेंभी नीचेसेऊपर तक विद्यालयोंमें वही वेदविरुद्ध "पैथागोरास" का मत विद्यार्थियोंके कोमलमस्तिष्कमें ठूंसा जाताहै। यथार्थमेंतो पृथ्यीस्थिरहै और सूर्यहीघूमताहै यह सूर्यका घूमतेरहना संसारके सबसेपुराने ग्रन्थ ऋग्वेदकमें है-

आकृष्णेन रजसाऽऽवर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्येन सविता रथेन देवोयाति भुवनानि पश्यन॥
ऋग्बेदद १। ३५। २ तैत्तिरीयसंहिता ३। ४। ११।२
शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता ३३। ४३=३४। ३१

अर्थ—भगवान्सूर्य स्वर्णमय रथपर बैठकर नीलवर्णवाले अन्तरिक्षपथआकाशमें। आवर्तमानः-घूमतेहुये देवादि और मर्त्यलोक निवासियोंको अपने अपने व्यापारमें लगातेहुये भूर्भुवःस्वः तीनोंभुवनोंको देखते हुये नित्यगमन करतेरहते हैं भ्रमत श्रमित निशि दिवसगगन पथ। (विनय पत्रिका ८७)

सूर्यस्याश्वा हरयःकेतुमन्तः सदावहन्त्यमृताः सुखं रथम्।
अथर्व वेद १३। १। २४

सूर्यस्य-सूर्य के। हरयः=केतुमन्तः अमृताः = अत्यन्तशीघ्र गामी अजर अमर। अश्वाः = घोड़े। सदा = सदैव अनवरत।

सुखं रथं वहन्तिः=सुखपूर्वक बिनाकिसी आयासके सूर्यकी रथ को खींचते रहते हैं। पुनः ऋ० १०। ६५। ६

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणावरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते॥

या विवस्वतः गौः—जो सूर्य की किरण
वर्त्तनिम् परि एति—ठीकप्रकारसे निश्चितमार्गको तयकरतीहै।
पयः दुहाना—जो समुद्रादिसे जलआकर्षण करके मेघके द्वारा पृथ्वीको जलसे परिपूर्ण करतीहुई। (दोहावली-

बर्षत कर्षत आपु जल अर्घन हर्षतभानु ॥५५॥
बर्षत हर्षत लोग सब कर्षत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभागसों भूपा भानुसम होय ॥ ५०८॥)

अवारतः व्रतनीः—निरन्तर अन्नको पुष्ट एवं प्राप्तकरातीहै।
सा वरुणाय विवस्वते—वह सर्वश्रेष्ठ-वरणकरनेयोग्य त्रिभुवनपति सूर्य के।
दाशुषे—अतितीक्ष्ण प्रकाश, शक्तिआदि देनेवाले सामर्थ्यको।
प्रब्रुवाणा-देवेभ्यः—बतलातीहुई देवताओं को।
हविषा दाशन्।—यज्ञाहुतिद्वारा शक्तिप्रदानकरतीहै उत्तरायण सूर्यकीकिरण बड़ीप्रखर होतीहै उसीसे जवादि अन्न आम्रादि फल पुष्टहोतेहैं और यज्ञादिकार्यभी उत्तरायण सूर्यमेंही होताहै और यज्ञीय आहुतिसे देवताओंको तृप्ति, पुष्टिहोकर उन्हें शक्ति प्राप्तहोतीहै। इसीसे यहाँ सूर्य किरणको ऐसाकहागया। सूर्यकी किरणोंका एकही गुण होनेकेकारण गौः

एक वचन कहा गया।

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।
(ऋ० ७।४५।१ तै० ब्रा० २।८।६।१)

सुरत्नः = उत्तम तेजस्वी रत्नोंको धारण करनेवाले
अन्तरिक्षप्रा = अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भरदेनेवाले
अश्वैः वहमानः = घोड़ों से जिनका रथ चलताहै, ऐसे
सविता देव. आ यातु = भगवान् सूर्यदेवजी आ जावें।

इतनाही नहीं सूर्य का उत्तरायण जानाभी वेद में है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
(ऋ० १।५०।११ तै० ब्रा० ३।७।६।२२)

मित्रमह सूर्य = मित्रके समान प्रकाशमानहे सूर्य नारायण !
अद्य उद्यन् = आज अभी शीघ्रही उदयहोकर और
उत्तरं दिवं आरोहन् = उत्तरायणके आकाशमें चढ़कर-जाकर
मम हृद्रोगम् = मेरे हृदय रोग को और
हरिमाणं च नाशय। = पीलियारोग को नाश कीजिये॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्॥
(तै० ब्रा० २।८।७।१ ऋ० १।११५।२ अथर्व २०।१०७।१५

अर्थ—जैसे कामुकपुरुष सुन्दरीप्रेयसीके पीछेपीछे घूमा करताहै इसीप्रकार सूर्यभी रोचमान-सुन्दरी उषादेवीके पीछे दौड़ा करताहै।

सूर्यकी रथका "हिरण्ययेन सविता रथेन" मंत्र वर्णनतो देखहीचुके अब सूर्यके घोड़ोंका भी वर्णन देखलीजिये।

सप्तं युंजन्ति रथमेकचक्रो अश्वो वहति सप्तनामा।

(ऋ० १ । १६४ । २ अ० ६ । ६ । २ तै० आ० ३ । ११ । ८
निरुक्त ४ । २७)

इमं रथं ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं वहन्त्यश्वाः ॥
(ऋ० १ । १६४ । ३ अथर्व ६ । ६ । ३)

सूर्य एकाकी चरति । शु० य० २३ । १०

जिस वेदने सूर्यको भ्रमणशील बतलायाहै वही वेद पृथ्वी को अचला बतलाता है । देखिये—

येन द्यौ रुग्रा पृथ्वी च दृढ़ा स्वःस्तभितं, येन नाकः । योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(ऋ० १० । १२१ । ५ यजु० वा० ३२ । ६ अथर्व ४ । २ । तै०
सं० ४ । १ । ८ । ५)

अर्थ—जिसने नक्षत्रमण्डलोंसहित यह महान आकाश और पृथ्वीको स्थिर बनायाहै, जिसने स्वः- स्वर्गकोस्थिर कियाहै, जिसने देवलोक स्थिर किया है, जिसने अन्तरिक्षमें धूलिकणोंके समान अनन्तविमानों के विचारने योग आकाश दिया है, उस परमात्माकी पूजा हम हविष्यान्न से करें।

आर्यसमाजी लोग प्रायः पृथ्वीको भ्रमणशील मानतेहैं परन्तु इसमंत्रमें आये दृढ़ा का अर्थ स्थिरा ही कियाहै जयदेव विद्यालंकार ने और स्वामी दयानन्द जीने स्वः का अर्थ (यजु० भाष्य में) सुखकिया है ।

गोस्वामी श्री तुलसीदासजीमहाराजतो कट्टर वेदानुयायी थे, इसीसे वेद की अवहेलनाकरके नवीन ज्योतिषियों की बात नमानकर-वैदिकसिद्धांतानुसार पृथ्वीको अचला और सूर्यको भ्रमणशील ही मानकर " दिनमणि चले करत गुण गाना "

लिखा है। वैदिक प्रमाण ऊपर देखा जा चुका, महर्षि द्वैपायन कृष्ण व्यास जीने श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में सूर्यका ही चलना माना है। विस्तारभयसे यहाँ पुराणों के प्रमाण नहीं दियेगये। आवश्यकता पड़नेपर पुराणों के प्रचुर प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। (मानसमणि १६। ६)

* शंका ३८ *

एक बार भूपति मन माहीं। भई गलानि मोरे सुत नाहीं॥

महाराज दशरथजीको जब चौथेपनतक सन्तानलाभ नहीं हुआ तो भारी "ग्लानि" क्यों करतेरहे। किसी स्वजातीय बच्चेको गोद क्यों नहीं लेलिया।

(पं० रामकुमार उपाध्याय रामायणाचार्य)

* समाधान *

केश तम पुंजन पै क्रीट मारतण्ड राजै,
कान रत्न कुण्डल अनूप छबि छावहीं।
नोकदार भौंह मार मरकतधनुष मानौं,
ऊर्ध्वपुण्ड्र रेख स्वर्ण सायक चढ़ावहीं॥
गौर मुख मण्डल पै मूँछै सुमरोरदार,
रोबदार दाढ़ी जू मनोहर सुहावहीं।
तूण धनुबाण असि धारें अङ्ग तुन्दिल पै,
गोद लै 'कुमार' राम हिय हुलसावहीं॥

गोद लेनेके सम्बन्धमें भगवान वेदने आदेशदिया है कि पुत्रीका पुत्र, नप्ता, नाती, धेवता, दौहित्र अथवा सगेभाईका पुत्र भतीजा कोही गोद लेना चाहिए अन्यकोनहीं, यहाँतककि सगी

बहिनतकका पुत्रभी गोद न ले अर्थात् सगेभानजे को भी पोष्य पुत्र-दत्तकपुत्र नहीं बनाना चाहिए—

न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भम्० ।

(ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ३१ मन्त्र २ । नि० ३ । ६)

इस मन्त्र में 'जामये तान्वः" भगनी पुत्र=भानजे को गोद लेना अपना सर्बस्व देना स्पष्ट मना है ।

शासद्वह्निर्दुहितुर्नाप्तयंगाद्विदाम् (ऋ० ३ । ३१ । १, नि० ३।३)

निरुक्तकार महर्षियास्क ने इस मन्त्र पर—

'प्रशास्तिवोढा सन्तान कर्मणे दुहितुः पुत्र भावम् ।…… नप्तारमुपागमद् दौहित्रम् ।

लिखकर नप्ता नाती पुत्री के पुत्र को गोद लेना—पोष्यपुत्र बनाना—दत्तक लेना विहित बतायाहै आगे ऋग्वेदके सातवें मण्डलमें वर्णनहै कि जब बशिष्ठके सौपुत्रोंको विश्वामित्रने नष्ट करदिया तो बंशोच्छेदके डरसे लोगोंने बशिष्ठजीसे कहा कि आप कोईदत्तकपुत्र-गोदलें या क्रीतकपुत्र=खीरीदकर पोष्य पुत्र बनालें इसपर बशिष्ठजीने कहाकि—

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्य जातमस्य चेतानस्य मा पथो विदुक्षः ॥

(ऋ० ७ । ४ । ७, नि० ३ । २)

अग्नेः—हे समाज के नेता विद्वान !

अरणस्य—जिसके उत्पन्न करनेमें रमण अर्थात् स्वयं वीर्याधान नहीं किया है ऐसा—

रेक्णः—अन्य के वीर्य सेचन से उत्पन्न हुआ सन्तान ।

परिषद्यम्—त्याज्य ही होता है । क्योंकि

अन्य जातम्—दूसरे से उत्पन्न सतान और
अन्य रायः शेषः—दूसरे का धन दोनों ही
न अस्ति।—नहीं (के बराबर) है। इसलिए
अन्य रायः शेषश्च—पराया धन और पराया पुत्र तो
अचेतानस्य—मूर्खों का होता है अर्थात मूर्ख लोग ही
परायेधन और परायी सन्तान को अपना
मान लेते (गोद लेते) हैं अतः आप
पथःमा विदुक्षः—सन्मार्गको दूषित न करें। मैं तो
नित्यस्य रेक्णः—अपने उत्पन्न किये पुत्र और
रायः पतयः स्याम।—अपनेकमाये धनका स्वामीहोऊंगा।

न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधाचिदोकः पुनरित्स एत्यनो वाजी भीषाडेतु नव्यः॥
(ऋ० ७। ४। ३ नि० ३। ३)

अन्य उदर्यः मनसा उ—दूसरे के पुत्र को मनसे भी
ग्रभाय—अपना बनाने (गोद लेने) को
मन्त वै न हि—नहीं सोचना चाहिए। क्योंकि वह
अरणः—अपगतार्ण = अर्थात् पित्रऋणको चुकाने वाला
नहींहै, अर्थात् उसके दिये पिण्डोदकादि नहीं
मिलते। अतः वह गोदलियाहुआपुत्र
सुशेवः न—उत्तम सुखदायक नही होता। और जो
अधाचित्—अपना औरस होता है।
सरणः वही पुत्र गतार्ण = ऋण चुकानेवाला होता है।
ओकः—गोद लियाहुआ पुत्रतो घरकी सम्पत्तिको
इत् एति-ग्रहणकरता स्वामीहोताहै। उसका दिया पिंडो-

-दक इसकेहीजन्मदायक पिता पितामह और
माता मातामहको ही प्राप्त होता है। अतः
नः नव्यः वाजी—हमें उत्तम, प्रशंसा योग्य बलवान् एवं
अभीषाड एतु —शत्रुविजयी, यशस्वी, विद्वान् औरस
पुत्र चाहिए।

अपनी औरस पुत्री का पुत्र तो उसी तरह है जैसे औरस पुत्रकापुत्र होता है। और भाईका पुत्रतो बिनागोदलियेही धन का अधिकारी हैही। महाराज दशरथजीके कोई सहोदर भाई किंवा औरस कन्या होनेका भी आर्ष प्रमाण नहींहै।

परम वेदज्ञ वशिष्ठजीके शिष्य एवं यजमान होकर अन्य पिण्डसे उत्पन्न सन्तानको गोदलेने दत्तक या पोष्यपुत्र बनाने को मूर्खताका विचारभी दशरथजी कैसे करते यहीकारण दशरथजीके गोद नलेने काहै और इसीसे भइ गलानि' उचितहै।

* शंका ३९ *

जिससमय बंदीगृहमें मातादेवकीके सामने भगवान् श्री कृष्णका प्रादुर्भाव हुआहै उस समय बालकरूप श्रीकृष्णके बस्त्रकाभी, वर्णनहै किः—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम्॥
(भा० १०।३।९)

परन्तु भगवान् श्री राम जी के आविर्भाव काल में:—

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजधारी।

भूषण वनमाला नयन विशाला शोभा सिन्धु खरारी ॥

आदि सबकुछ वर्णनकरकेभी गोस्वामीजीने वस्त्रका वर्णन क्योंनहीं किया ? क्या अवतार कालमें श्रीरामजी वस्त्रनहीं पहिनेथे ? यदि नहीं न तोक्यों ? (पं० रामनाथ 'जोतिषी')

*** समाधान ***

जिन नटवर की भृकुटि पैं नटत विश्व सब कोय।
हम सब जग की सब विपति हरैं विश्वपति सोय॥

जबतक अच्छीतरह कूर्चश्मश्रु-दाढ़ीमूंछके बाल स्पष्ट नहीं होजाते तबतक जन्मसे लेकर १६। १८ वर्षके नवयुवकपुरुषको भी बालकही कहाजाताहै। श्रीविदेहराजने किशोरावस्थापन्न श्रीरामलक्ष्मणजीको देखकर कहा था कि—कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक" रानियों और श्री परशुराम जी आदि ने भी ऐसे ही कहा था—"ये बालक असि हठ भलि नाही।"
"देखु जनक हठि बालक एहू।" 'बालविलोकि बहुत मैंबाँचा।' आदि। अवतारकालमें भगवान श्रीकृष्णजीके लिये "अद्भुतं बालकम्।" कहे जाने पर भी श्रीदेवकी जी ने कहा था कि—

रूपं चेदं पौरुषम्॥ (भाग० १०। ३। ३८)

इससे स्पष्टहो जाताहै कि भगवान् श्रीकृष्णजी माता श्री देवकीजीके सामने किशोरावस्थापन्न रूपसे ही प्रगटहुयेथे। अब मानसमें अवतारकालका वर्णन तथा कौशल्याजीका कथन देखिये। स्तुति के अन्तमें श्रीकौशल्याजीने कहा कि—

तजहु तात यह रूपा। कीजै शिशु लीला अति प्रिय शीला।

यहरूपा अर्थात निज आयुध और भूषण बनमालादि त्यागकर शिशुलीलाकीजिये। इससे मालूम हुआ कि सूतिका

गृहमें प्रागट्यकालमें श्रीरामजीका शरीरप्रमाण शिशुवत-बहुत छोटे बच्चेकी तरहही रहा। अद्भुतता आयुध (धनुर्बाण) और वनमालादिभूषण धारणकीथी। माताजीने इसी भूषणबन-माला और आयुधादिसम्पन्नके त्यागनेकी प्रार्थनाकिया। इसीसे सुरभूपाप्रभु नरबालक अर्थात् नरबालकवत बिनाआयुध और भूषणादिके एवं नालादिसेयुक्त होकर रोनेलगे। श्रीराम जीके बालकरूपमें यही अद्भुतताथी कि निजआयुध-धनुर्बाण. वनमालादिभूषण एवं विनानालतथा जेर आदिके प्रगटहुये थे। माताकी प्रार्थनापर उसी अद्भुतताको त्यागदिये। श्रीराम-जीका शरीराकार प्राकृतशिशुवतहीथा इसीसे प्राकृतशिशु नहींकहा गया। और माता श्रीदेवकीजीकी स्तुतिपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी-"बभूव प्राकृतः शिशुः।" (भाग० १०।३।४६)

निष्कर्ष यहकि भगवान श्रीकृष्णजी अवतारकालमें पुरुष-बालक अर्थात् किशोरावस्था सम्पन्नथे इसीसे उनकेवस्त्रका वर्णनहै और भगवान् श्रीरामजी अवतारकालमें प्राकृतशिशु अत्यन्त छोटे बालकके शरीरवाले थे इसीसे उनके वस्त्रका वर्णन नहींहै।(मानसमणि ५। ६)

* शंका ४० *

श्रीरामचरितमानसमें श्रीराम एवं रावणादिका जन्मतो वर्णनकियागया पर महाराणी श्रीजानकीजीकी जन्मकथा का क्यों नहीं वर्णनकियागया ?(रसिक बिहारी 'भगतजी'धनवाद)

* समाधान *

विदेहराजकन्यके सुनेत्रयैकलालिते,
मृदंग वाद्य लालसे मदालसे सुगायिके।

सखीगणैस्समावृते सु बालकेलितत्परे,
प्रसीदरामवल्लभे प्रदेहि पादपल्लवम् ।

श्री गिरिराजसुताने लखी शिवकेरि समाधि लगी जबहीं,
सौतिहिं खोजि निकारनकारन नाथकी खोलींजटा तबहीं ।
देखि शिवाकहँ खोजतधार ह्वै गोमुख ह्वै हरिद्वार वहीं,
छाँड़िसमाधिहिं खोजत शङ्करि शङ्कर शं—करदें सबहीं ॥

(क) रामावतारकी लीलाका मुख्यकारण रावणथा इसलिये रावणका जन्म कर्म कहना परमआवश्यकथा इसलियेतो रावणकी जन्मकथा जिसके अंतर्गतही प्रतापभानुकी कथाहै तथा उसके दिग्विजय आदिकी कथा कही गई है। रामचरितमानसमें मनुवरदानकल्प—इस श्वेतबाराहकल्पके वैवस्वत मन्वंतरके २४ वें त्रेतामें जब मनुशतरूपा-दशरथकौशल्या एवं प्रतापभानु-रावण हुयेथे इसीकल्पकी कथा वर्णितहै । इस कल्पमें रामजीके जन्म, बाल, बिबाह, वन, युद्ध और राज्य आदि जितने चरित्र हैं सबमें श्रीरामजीने अपने ईश्वरत्वको छिपाकर नरवत कार्य कियाहै क्योंकि "रावन मरन मनुजकर याँचा।" इसीसे जगह जगह पर कहा गया है कि—
'उमाकरत रघुपति नर लीला' 'नटकृत कपट चरित रघुराया'
'नरगति भगत कृपालु देखाई' 'मैं कछु करब ललित नर लीला'

इत्यादि, और श्रीकिशोरीजूका जन्म मनुष्यसन्तानके समान नहींहुआथा किन्तु अपूर्वरूपसे जन्मचरित्र संपन्नहुआ था और बिवाह एवं गार्हस्थ्यधर्मपालनादि शेप सबचरित्रनरवत्होहुयेहैं इसीसे श्रीकिशोरीजूकोजन्मकथा रामचरितमानस

में नहीं लिखीगई अन्यसबकथायें विस्तारपूर्वक लिखीगई हैं।

(ख) मनुमहाराजको वरदान देतेसमय श्रीरामजीने सांकेतिकरूपसे श्रीकिशोरीजूके जन्मके बारे में कह दिया था कि—

"सो अवतरिहिं मोरि यह माया" इसीसे दुबारा जन्म प्रसंग नहींकहागयाहै। ऐसा माननेपर यह शङ्का होसकती है कि तब तो—

अंशनि सहित देह धरितात। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥

इनशब्दोंमें भरतादिके जन्मकेबारेमें भी श्रीरामजीने संक्षेप में कहहीदियाथा तबफिर भरतादिका जन्मप्रसंग कविने क्यों लिखा ? इसका समाधान यह है कि जैसे—'रामबाम दिशि सीता सोई।" इस अर्द्धालीमें श्रीकिशोरीजूकानाम कहदिया गयाथा वैसे वहाँ अँशोंकानाम नहींकहा गयाथा, केवल इतना ही कहागया था कि—

"शंभुविरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंशते नाना॥"

इसलिये भरतादिकाजन्म संक्षेपमें कहकर यह स्पष्टकर दिया कि भगवान् श्रीरामजीके जिन एकएकअंशोंसे नानात्रैदेव उत्पन्न हुआकरतेहैं और श्रीरामजीने मनुसे जिनअंशोंको साथ लेकर अवतारलेनेका संकेतकियाथा उनअंशोंका नाम श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नहै। और वेतीनों क्रमशः बैकुण्ठाधीश चतुर्भुजश्रीमन्नारायण क्षीराब्धिशायी सहस्रभुजविराटपुरुष श्रीमन्नारायण और श्वेतद्वीपाधिपति अष्टभुजभूमापुरुषश्रीमन्नारायण हैं, जैसाकि सात्वतागम नारदपंचरात्रमें स्पष्ट लिखाहै। यथा वा०रा० शिरोमणि टीकोद्धृत वृहद्ब्रह्मसंहिता-

वैकुण्ठेशस्तुभरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नस्तु स्वयंभूमा रामसेवार्थमागताः॥

(ग) इसग्रन्थकानाम 'रामचरितमानसहै, सीताचरितमानसनहीं। और जैसा आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकेलिये कहागया है कि—

"कृत्स्नंरामायणं काव्यं सीतायाश्चरितंमहत्" वा० रा० १।४।७

वैसातो श्रीरामचरितमानसकेलिये कहींकहा नहींगया है इसीलिये रामचरितमानसमें श्रीरामजीके अतिरिक्त अन्यपात्रोंकाचरित्र उतनाही कहागयाहै जितनेसेकि रामचरितकी शृङ्खला विच्छिन्न नहीं होती पायीगयी। जिसकेबिना रामकथा सरजूकी धारामें किसीप्रकारकी रुकावटनहीं पड़तीथी उसे नहींवर्णनकिया जैसेकि सूर्यबंशका विस्तारप्रस्तार, श्रीदशरथकौशल्याका जन्म, विवाहादि श्रीकिशोरीजीकी जन्मकथा और श्रीहनुमानजी एवं सुग्रीवादि अन्य बानरोंकी जन्मकथाआदि। इसी कारण अन्य रामायणोंमें वर्णित कथायें श्रीरामचरितमानसमें नहीं हैं।

औरजो शिवचरित्र, नारदमोह, भुशुण्डचरित्र ज्ञानदीपक और भक्तिमणि आदिका वर्णन रामचरितमानसमें है वहतो विभिन्न श्रोताओंके उत्तरमेंउनकी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये कहागयाहै कुछ रामकथाका प्रवाह अक्षुण्ण बनायेरखने के लियेनहीं।

(घ) कदाचित् श्रीकिशोरीजूके अवतारके विषयमें मानसके तीनों श्रोताओंमें किसी श्रोताकोभी कुछसंदेह नहींथा इसीसे किसीने इसविषयमें कुछप्रश्न नहींकिया। यदि किसीश्रोताने श्रीकिशोरीजूकी जन्मकथा पूँछी होतीतो वक्तालोग अवश्यकहते इसमें कोईसंदेह नहीं। रामचरितमानसके श्रोता-

ओंमें सबसे प्रधान श्रीपार्वतीजी हैं उन्होंने आग्रहकिया कि—

'रघुपति कथा कहहु करिदाया॥
प्रथम सोकारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्मसगुन बपुधारी॥
पुनिप्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु यथा जानकी बिबाही॥' इत्यादि इनप्रश्नोंमें कहींभी श्रीकिशोरीजूके जन्मबिषयिकप्रश्न संकेतरूपसेभी नहींहै। इसी तरह श्रीपार्बतीजीकेही प्रश्नोंकी पुनरावृत्ति सबश्रोताओंके प्रश्नों मेंहै—महर्षिभरद्वाजकाप्रश्न सुनकर श्रीयाज्ञवल्क्यजीनेकहा कि-
ऐसेहिं संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

और श्रीगरुड़जीके प्रश्नोंके बिषयमें तो भगवान् शङ्करजी नेही कहाहैकि—

'ऐसेहि प्रश्न बिहंगपति कीन्ह काकसन जाइ'

अतएव निश्चयहैकि·श्रीरामचरित्रमानसके किसीभी श्रोता ने श्रीकिशोरीजू महाराणीके जन्मके बिषयमें नहींपूँछाथा, कारणकि महाराणी श्रीकिशोरीजूका जन्मप्रसंग निःसंदिग्धथा इसीसे इस ग्रन्थमें उस प्रसंगकी चर्चा नहीं की गई।

[मानसमणि १।७]

❀ शंका ४१ ❀

(सस्तीहोनेकेकारण गीताप्रेसकी रामायणका प्रचुरप्रचारहै) गीताप्रेसके बालकाण्डमें भगवान्का नखशिखवर्णनहै, 'सुन्दर श्रवन सुचारुकपोला।' आदिसबकुछहै परन्तु वहाँ नेत्रोंका कुछभी संकेतनहीं। यहकहाँतक न्यायसंगतहै।

(पं० राजेन्द्रमोहन कटारा)

* समाधान *

नितान्त राजमन्दिरे समातृपितृभ्रातृभि-
र्विरोचमानबालकैः सुहृद्भिरालिभिर्मुदा।
बिभुज्यमानमोदकं सुपूपसूपयावकं
विषज्यहस्तपद्मकैर्भजामहे रघूत्तमम्॥

गीताप्रेसके कर्णधारलोग अंग्रेजी उपाधि (डिग्री) के पीछे लट्टू थे और उनउपाधिधारियोंने स्वयं अधिकपरिश्रम न करके मानसपीयूषके दियेहुये पाठफेरोंसे अपना ग्रन्थ तैयार कियाथा, और सम्पादक मानसपीयूष अंग्रेजी एवं फ़ारसी उर्दू के तो अच्छे विद्वान्‌हैं परन्तु संस्कृत और हिन्दीके नहीं, अवधीकातो ककहराभी नहीं जानते। अवधीका ठीकज्ञान अयोध्याके समीपीग्रामों देहातोंसे होताहै न कि कालिजों, संस्कृतमहाविद्यालयोंसे। मानसपीयूषके पाठफेरादि की गल-तियाँभी गीताप्रेसने प्रायः ज्योंकीत्यों लेलीं। जिन ग्रंथोंसे पाठ फेर लियागयाहै उन ग्रंथोंको सामने रखकर परिश्रम पूर्वक सच्चाईके साथ गीताप्रेसकेकर्णधारलोग अपनी प्रतिका मिलान करें और अर्थ समझतेहुये, तब उन्हें अपनी गलती दिखाईदे यही हाल चौपाइयोंके निष्कासन एवं परिवर्धनकी भीहै। सभीअँग्रेज बच्चोंके मस्तिष्कका यहीहालहैकि जितना ही गलत पाठरखें जितनाही शब्दोंको विकृत करदें दोहा चौपाइयोंकी एकाधमात्रा कमबेशीकरके बिगाड़दें, वह उतनाही प्राचीन एवं प्रशस्त पाठ होजाय। अतः आप केवल गीताप्रेस कोही दोषदें यहठीकनहीं गीताप्रेसभीगतानुगतिकबनगयाहै।

अस्तु संशोधकों की बातभी बिचित्रहीहै। आजके संशो-

धक प्रायः मूलप्रतिकीही खोजकरतेहैं पुरानीटीकाओं अथवा पुरानीछपी प्रतियोंको प्रायः नहीं देखते। इसीतरह गुरुएड-पाश्चात्य शिष्यत्वके सामने विशुद्धभारतीय संशोधकोंके संशोधनको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखतेहैं, और अपनी स्वीकृतपंक्तियोंमेंभी बहुतसे ऐसे बिकृतशब्द रखतेहैं कि जिससे पिंगलके नियमानुसार एकाधमात्रा अधिक या कमहोकर दोहाचौपाई आदि छन्द दूषित होजातेहैं। जिसेपढ़कर लोग समझलें कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी छन्दःशास्त्रसे अनभिज्ञ अथच अशुद्ध लिखनेवालेथे। और अपने धनकेबलसे विद्वान् कहानेवाले धनदासों द्वारा अपने अशुद्धपाठ को शुद्धताकाही समर्थन प्राप्त करतेरहतेहैं।

प्राचीनसंशोधकोंमें भगवत्पदप्राप्त रामायणी श्रीमाधव दासजीमहाराज का एकबिशिष्ट स्थानहै जिनके अनेकों शिष्य प्रशिष्य आजभी जीवितहैं। अपनेसमयमें वे भारतवर्षभरमें सर्वप्रधान रामायणीकरके सर्व विद्वन्मंडलीमें मान्यथे। उन श्रीमाधवदासजी महाराजका संशोधन काशीतथा अयोध्या दोनोंजगहोंके मानसप्रेमियोंको मान्यरहा, उनकीसंशोधित सन् १६०० ई० से १६१८ ई० तककी चार आवृत्तियोंमें बराबर नेत्र वर्णनवाली चौपाई है। (१) पं० श्रीरामगुलामद्विबेदीजी को तो कोई रामायणप्रेमी कभी भूलही नहीं सकता। द्विवेदीजीकी प्रतिसे सं० १६१४ वि० में बड़ीपियरी काशीमें स्थित जगन्नाथ दूबेके प्रेसमें पत्थरकीटाइपमें छपी प्रतिमें नेत्रवाली चौपाई है। (२) सं० १६१४ वि० में दिवाकरप्रेस काशीमें छपी प्रतिमें भी है (३) मानसदीपिकामें भीहै जो फरवरी स० १८८० ई० में

नवलकिशोर ने लखनऊकी छपी है (४)। सन् १८६६ ई० में बुद्धिप्रकाशप्रेससे लेथूटाइपमें छपी प्रतिमें है (५) स० १८७५ ई० में हरिमोहन खत्री संपादित लेथू टाइपमें छपीप्रतिमेंभीहै (६) श्रीरामचरितमानस प्रकाशनसमितिराजकोटसे गुर्जराक्षरोंमें प्रकाशितप्रतिमेंभी नेत्रवर्णनकी चौपाई है (७) मानसके अर्वाचीन संशोधकोंमें साकेतवासी श्रीरामबालकदासजीरामायणी अयोध्याजीकास्थान मानस ज्ञाताओंमें बहुत श्रेष्ठ मानाजाता रहा। उन्होंने अपनीसंशोधित प्रति एवं टिप्पणीवाली साँची प्रतिमें नेत्रवाली चौपाई रखी है (८) पीछेकी प्रतियोंमें उनके लायक शिष्योंने निकालदिया । वर्तमानकालमें भारतके सर्व श्रेष्ठ रामायणज्ञाता श्रीअयोध्याजीसे बाहर कथाकहनेकेलिये बाहर न जानेवाले विद्यावयोवृद्ध रामायणी पं० श्रीरामसुन्दर दासजी मणिरामजीकीछावनी नेभी अपनी संशोधित प्रतिमें वह चौपाईरखीहै। [९] गीताप्रेसके प्रतिनिधियोंने काशीकी बैठकमें स्वीकार कियाथा कि "काशीराजसंस्करण" जब निकलेगा उसका पाठ गीता प्रेसको मान्यहोगा । दो वर्ष पूर्व प्रकाशित काशिराजसंस्करणमेंभी वह चौपाई है ।[१०] टीकाकारोंमें पं० ज्वालाप्रसादमिश्र [११]पं० रामेश्वरभट्ट १२ नेतो दियाही है परन्तु क्षेपक रखनेके कारण उनकामान रामायणीय समाजमें नहीं है परन्तु पंजाबी श्रीसंतसिंहजी ज्ञानीका स्थान टीकाकारोंमें बहुत ऊँचाहै। उनकी सं० १८८८ वि० की लिखी टीकामें वह चौपाईहै। (१३) मुन्शीसदासुखलाल (१४) सुप्रसिद्ध कथावाचक एवं टीकाकार पाण्डेय श्रीवत्सजी-प्रयागवाले [१५] मैनपुरीटीका [१६] और पं० मातृदत्तजीत्रिपाठी तथा

पं० ललिताप्रसादजी ओझाकी सम्मिलित टीका-रणबहादुरी टीकामें भी वह चौपाईहै। (१७) विनायकी टीकामें भीहै (१८) इनडेढ़ दर्जन प्रतियोंमें तो मैंने नेत्रबर्णनवाली चौपाई देखीहै। इनके अतिरिक्त औरभी न जाने कितनी प्रतियोंमेहै। वह चौपाई आपकी लिखी 'सुन्दर श्रवन......तोतरे बोला'के बाद नीलनलिन दोउनयन बिसाला। बिकटभृकुटि लटकन बरभाला॥

यह नेत्र बर्णन की चौपाई है। इसकेबाद तब "चिक्कन कच कुंचित गभुवारे" आदिहै। यदि कहाजाय कि श्रावणकुञ्जवाली प्रतिमें 'नीलनलिन दोउ नयन... बर भाला" चौपाई नहीं है अतः अग्राह्यहै, अस्पृश्यहै। तो जिन भगवानदीन ब्रह्मणकी लिखी श्रावणकुञ्जकी प्रतिहै इन्हींकी लिखी बिनयपत्रिकाभीहै जो पहले बाबू छुन्नूसिंह चौधरी—रामनगरके पासथी अब काशीनरेश (रामनगर) कीपुस्तका-लयमेंहै उस बिनयपत्रिकामें १७८ पद्यहीहैं। परन्तु अब संपा-दक मानसपीयूष, गीताप्रेस एवं अन्यलोगभी २७६ पद्यकी बिनयपत्रिका छापतेहैं।

तब रिषि तुरत गौरिपहिं गयऊ। देखिदसा मन बिस्मयभयऊ॥

यह चौपाई श्रावणकुञ्जमें होतेहुयेभी गीताप्रेसआदि कइयोंने नहीं ली है। राजापुरकी प्रति अयोध्याकांडमें—

"सकल सुकृत मूरति नर नाहू। राम सुयस सुनि अतिहि उछाहु"
'रामसनेह सुधा जनुपागे'। 'लोग बियोग बिषम बिष दागे॥'
'अर्धतजहिं बुध सरबस जाता'। तुम कानन गवनहु दोउभाई॥
'फेरिय लखन सीय रघुराई।' सुनि सुबचन हरषे दोउभ्राता॥

इतनी पंक्तियां न होनेपरभी इनकेलिये वकालत की जाती

है, जोतर्क इनपंक्तियोंके रखनेकेलिये कीजातीहै वैसीहीतर्क नेत्र वाली चौपाई केलियेभी लागूहै । आजके स्वयंभू सम्पादकों एवं संशोधकों ने तो श्रीरामचरितमानसको अपनी क्रीड़ाका प्रसाधन बनाकर मनमानीढंगसे पाठका परिवर्तन एवं संमिश्रण तथा निष्कासनकियाहै। अनेकनिष्कसनोंमें वह उपर्युक्त नेत्र बर्णनवाली चौपाई भी है। कुछलोग कहदेतेहैं कि यह 'कोटिकामछबिश्याम शरीरा।'से 'रूप सकहिंनहिंकहि श्रुतिशेषा तकका नखशिखबर्णन श्रीरामजीके सोतेसमयका है। सोते समय नेत्रबन्दरहनेसे यहाँ उनकाबर्णन नहीं कियागया। परंतु यहकहना नितान्त हास्यास्पदहै क्योंकि इसप्रसंगमें बोलने और चलनेका स्पष्टबर्णन है। देखिये बोलना—अति प्रिय मधुर सु तोतरे बोला। और चलना–जानु पाणि बिचरन मोहि भाई॥ है। अतः श्रावणकुञ्जवाली प्रतिकेलेखक भगवानदीनब्राह्मणकी असावधानतासे नेत्रबर्णवालीपंक्ति छूटगईहै। जिसे श्रीपंजाबी जी आदि मानसमर्मज्ञोंने एवं अन्य विद्वानोंने अपनीप्रतियोंमें दियाहै। परन्तु जिनका ध्येयही दुराग्रहपूर्णहै जो शुद्धप्रतिकी ओटमें अशुद्धताके प्रचारकहैं वे प्राप्तहोनेपरभी अनेकपंक्तियाँ नहीं छापते ।

दीपनारायणलाल पेशकार जंगलात-चकिया बनारसने काशीके एक बहुतप्रसिद्ध रामायणीका भाव अपनीशंकाओंके साथ लिखभेजाहै कि "यह बालकांड दोहा १९९ वालानखशिखका दर्शन गोस्वामीजीने स्वप्नमें कियाथा और स्वप्नकी बातें प्रायः भूलजातीहैं अतः नेत्रदर्शन भूलगयेहोंगे तभीनहीं बर्णितहै। यहप्रसंग अन्य वक्ताओंका नहींहै गोस्वामीजीकाही है।" आदि

परन्तु रामचरितमानसके अनुशीलनसे पता चलता है कि—
औरौ एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति मोरी॥
से 'जिन रघुनाथचरन रतिमानो। तिनकी यहगति प्रगट भवानी
तक भगवान् शंकरका वक्तव्य है इसप्रसंगके वक्ता भगवान्
शंकरही है, और वे ध्यानमें श्रीरामरूपनहीं देखरहे हैं अपितु
काकर्षि श्रीभुशुण्डिजीकेसाथ प्रत्यक्षदर्शन कररहे हैं। इसझाँकी
में श्रीरामजी आँगनमें बकैयाँ--जानुपाणिसे चलते हैं और
मधुरमधुर अत्यन्तप्रिय तोतरी बाणीभी बोलते हैं।

अतः यह ध्यान न तो श्रीरामजीके सोतेसमयका है और
नाहीं-गोस्वामीजीने ध्यान या स्वप्नमें देखकरही लिखा है,
इसेतो श्रीशिवजीने प्रत्यक्ष देखकर बर्णन किया है।

(मानसमणि ८। ३)

❋ शंका ४२ ❋

अनुज सखा संग लेहिं बुलाई, बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावनमृग मारहिं जियजानी, दिनप्रति नृपहिं दिखावहिं आनी॥

यहाँ मृगका क्याअर्थ लियाजायगा? क्या मृगमांस भक्षण
के लिये नहीं मारेजातेथे? जोमृग स्वतः ही पावनथे उन्हेंक्यों
माराजाताथा? प्रभुतो दुष्टोंसेरहित भूमिकरने आयेथे अतएव
अपावनोंको खोज २ कर बधकरनाही उचितथा। इसमें क्या
रहस्य होसकताहै? (पं० राजेन्द्रमोहनशर्मा कटारा हाथरस)

❋ समाधान ❋

सुहृद्प्रणैर्महाभटैर्महास्त्रशस्त्रसंघटैः,
प्रवृत्त युद्धकौशले विकृष्यमाणमानसम्।

मनोजकोटिमोहनं निवद्धकच्छमद्भुते,
प्रमत्तमल्लसंयुगे भजामहे रघूत्तमम् ॥

मृगयाकाअर्थ वध्य मृग–चौपायोंका मारनाहै । किसी भी जीवकामांस मनुष्योंका भक्ष्यनहीं है । इससंबन्धमें पिछली २८ वीं शंकाका समाधान पृष्ठ १०७ से ११३ तक देखिये। पुनः व्यासजीने लिखा है कि—

यस्यराष्ट्रे मृगः पुण्यः कृष्णसारः स्वमृत्युना ।
मृयते तस्य तद्राष्ट्रे विप्लवः परिजायते ॥

(श्रीअग्रदासीय अष्टयामटीकोद्धृत पाद्मे)

अर्थात् जिस राजा के राज्यमें कृष्णसार–परिपक्वकस्तूरी वाला पुण्य-पावन मृग अपनी मृत्युसे मरजाता है उस राजाके राज्यमें विप्लव होताहै । इसका स्पष्टीकरण यहहैकि जब कस्तूरी वालामृग पूर्ण युवावस्थाको प्राप्तहोजाताहै तब उसकी नाभिमें कस्तूरी उत्पन्न होतीहै और जब वह वृद्ध होने लगता है तब कस्तूरी पकने लगतीहै, जब कस्तूरी पूर्णरूपसे परिपक्व होजातीहै तब उसकी संज्ञा पुण्यपावनमृग कृष्णसारकी होती है। वह कृष्णसारमृग यदि अपनीस्वाभाविकमृत्युसे मरजाता है अर्थात् बिनाकिसीप्रकारके आघातादिकेही मरजाताहै तो उसकेमरतेही वहकस्तूरी उसकेमांसमें विलीनहोकर असंख्यों ऐसे कीटाणुओंकी उत्पादिका होतीहै कि जो एकएक कीटाणु किसीभी वृक्ष पशु पक्षी या मनुष्यकेऊपर पड़कर उन्हें ऐसे असाध्यरोगसे रुग्ण करदेतेहैं कि उनपर कभीभी कोईऔषधि-कारगर नहींहोती और वे शनैः शनैः घुलघुलकर कालकवलित होजातेहैं । यही राष्ट्रविप्लव है । परन्तु कस्तूरीपकनेपर उस–

मृगको मारदेनेपर फिर यहविप्लव नहींहोता। तथा अनेक-लाभप्रद महार्घवस्तु महामदकस्तूरी एवं चर्म मिलताहै सो घातेमें अस्तु। क्या आपने कभी—'पावनमृग मारहिं जिय-जानी।' पद्यान्तर्गत 'जियजानी' शब्दपर बिचारकिया है? जियजानीका रहस्य यहहैकि श्रीरामजी जब हृदयमें अच्छी तरह जानलेतेथेकि इसकी कस्तूरी पकगईहै तब उसेमारतेथे। अतः पकीकस्तूरी जानकरही उस पुण्य पावनमृग कृष्णसार-को मारनाचाहिये। उसकी पहिचानका ढंग बहुत सरलहै। अर्थात् कस्तूरीके पूरीतरह पकजानेपर वहमृग खानापीना और सोनाबैठना सबकुछ परित्यागकर अपने आसपासकी भूमि, वृक्षकी जड़, लता, विवर, पर्वत, तृण, पत्थर सभीको सूँघने लगताहै।

ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मतिमन्द जानि नहिं पायो।
खोजत गिरितरु लता भूमि बिल,
परम सुगंध कहाँ ते धौं आयो॥
(वि० प० २४४)

वह सुगंध खोजतेसमय उसको मारडालना चाहिये। अन्यथा वह खानापीना छोड़देनेके कारण चार छः दिनमें मरकर राष्ट्रविप्लवका कारण होताहै। अतएव राष्ट्ररक्षार्थ श्रीरामजी सुपक मृगमदको लक्षणसे जीमें जानकर पावनमृग कृष्णसार पुण्यमृग को मारतेथे, खानेके लिये नहीं।

दूसरा समाधान यहभी होसकताहै कि जो यक्षगंधर्वादि किसी शापादिके कारण मृग-पशु योनिमें प्राप्तहो गयेथे और

अपनाश्रापकाल पूर्णकरके प्रायश्चितरूपेण पशुयोनि गत कष्ट भोगते २ पावन शुद्धहो चुकेथे, जीमें उनका उद्धारकाल संप्राप्त जानकर उन्हेंमारकर तत्तत्स्थानको स्वर्गादि भेजदेतेथे। इसीसे

जेमृग रामबान के मारे। तेतनु तजि सुरलोक सिधारे॥

वे रामबाणसे मारेजाने परभी मुक्त न होकर सुरलोक जातेथे यद्यपि कि—

रघुबीर शरतीरथ शरीरन त्यागिगति पैहहिं सही।

ये ये हताश्चक्रधरेण राजन्, त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन।
ते ते गता वै परमं पदं यत्–क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः॥

(पांडवगीता २३) अतः उनके सुरलोकजानेका एकमात्र यही कारणथा कि वे श्रापितथे तभीतो—

मुक्तनभये हते भगवाना। ...... द्विज बचन प्रमाना॥

चौपाये-पशुमात्रकी मृग संज्ञाहै। मानसका ही उदाहरण देखिये कि—बाराह को भी मृग कहाहै—

'प्रगट दुरत जाइ मृग भागा। रिसि बसभूप गयउ सँग लागा॥

"तदपि न मृग मग तजै नरेशू।" श्रापितगंधर्व बिल्वादिका महिषादिरूपमें प्राप्तहोने और श्रीरामबाणसे मरकर उद्धारपाने-अपने पूर्वरूप प्राप्तकरने आदिकी विस्तृतकथायें सत्योपाख्यानादि रामचरित्रात्मक ग्रंथोंमें देखी जासकतीहैं। और-'दिनप्रति नृपहिं देखावहिं आनी।' का मतलबहै कि दौड़कर जिनमृगों पशुओंको जिन्दाही पकड़लेतेथे उन्हें लाकर राजा श्रीदशरथजीको देखातेथे—

जीवन्तं मृगमादाय नृपस्याग्रे समर्पयेत। अष्टयाम

आशाहै कि उपर्युक्त दोनों समाधानोंको समाधानचित्तसे

पढ़नेपर इस पावनमृग बधका रहस्य आपकी समझमें पूर्ण-रूपेण आजायेगा।

* शंका ४३ *

'तुम मुनि पिता आननहिं कोऊ।' 'गुरुपदपदुम पलोटत प्रीते॥'

कौशिक महर्षिको श्रीरामजीका पिता और गुरु दोनों कहना कैसे ठीकहै? और 'उठेसकल जब रघुपति आये।' तो जब गुरु और पिताहैं तो बिश्वामित्रजीभी उठे? यदि उठे तो क्यों? (पं० रामरक्षित शुक्ल रामायणी बनारी)

* समाधान *

पाइ परागहिं जा पद पंकज की, मम पांसु परी पतिताई।
सामुहे सीय कियो सरनागत स्वामि सियापतिसों सुसगाई॥
कीन्ह 'कुमार' कुमारग काटि कथा करुनानिधि की कबिताई।
सो गुरु श्री गुन ग्याननिधान गहैं मम प्रेम प्रनाम सहाई॥

शास्त्रों में पांच तरहके पिता कहेगयेहैं- देखिये अग्नि पु०

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पंचैते पितरः स्मृतः॥ सु० र८भां०॥

उपर्युक्त पांचो एकश्रेणीकेहैं अतः वे पांचो पिता एवं गुरु कहे तथा मानेजासकतेहैं। दशरथजीने अपना पितृत्वधर्म कौशिकमहर्षि पर न्यस्तकरदियाथा-'तुममुनि पिता आन नहिं कोऊ।' तत्पश्चात् बिश्वामित्रजीने श्रीरामलक्ष्मण दोनों-भाइयोंको बला अतिबला विद्या तथा समंत्र सहस्रों शस्त्रास्त्र विद्या दियाथा- विद्यानिधिकहँ विद्या दीन्हा। एतदर्थउन्हें पितातथागुरू दोनोंकहना किसीतरहभी वदतोव्याघातदोष नहीं है। और यहांका-'बिश्वामित्र निकट बैठाये।' शब्दही कह

रहाहैकि वे बैठेहीरहे। शहरसे मुनिजीसे मिलने जोलोग आये थे वेहीलोग 'रघुपति' के आनेपर उठेथे, मुनिविश्वामित्रनहीं।

*** शंका ४४ ***

गौतमपत्नी अहल्याने श्रीरामजीकी प्रार्थनामें 'रावणरिपु' जोकहा सो वहतो श्रापवश शिला हुईथी, उसने मुक्तिपातेही भगवानको- रावण रिपु जन सुखदाई।' कैसे कहा, उस वक्त तो रावणसे शत्रुताभी नहीं हुईथी तो उसने कैसे कहा? (जगदीशनारायणसिंह 'प्रेम' भागलपुर)

*** समाधान ***

हौं नाहीं गौतमबधू जो तारी रघुराय।
तारत तारी बाजिहैं देखहु चरन छुवाय॥

(क) होसकताहै कि उससमय अहल्याको पाषाणहोनेका शापही न हुआहो और अहल्या अपनेपति महर्षिगौतम और पुत्र शतानन्दकेसाथ आश्रममेंही रहती रहीहो जबकि—

सुर मुनि गन्धर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका।
संग गोतनु धारी भूमि बिचारी०॥

और ब्रह्मलोकसे कैलाशजाकर सबकोई एकसाथ मिलकर एक स्वर से—जय-जय सुरनायक जन सुखदायक०। आदि स्तुति किया, जिससे बरदान मिलाथा कि—

जनि डरपहुँ मुनि सिद्ध सुरेशा। से लेकर निर्भय होहु देव समुदाई।' सात चौपाईतक। अहल्या मुनिपत्नी होनेसे सबबातें जानतीरहीहो, अब पाषाणसेचैतन्य होतेही पूर्वकालिक सभीबातें स्मृतिमें आगईहों जिससेकि उठते ही श्रीरामजीको 'रावणरिपु' शब्द से बिशेषित किया—

(ख) यहभी होसकता है कि तत्वदर्शीमुनिगण त्रिकालज्ञ-होतेथे उन्हें पूर्वसेही श्रीरामचरित्र ज्ञातथा, जैसेकि महर्षियाज्ञ-वल्क्यजीने जनकपुरमें पहलेसेही समस्तरामकथा सुनादियाथा जिसे स्मरणकरके मिथिलेश्वरी श्रीसुनयनाजी कहतीहैंकि-

राम जाइ बन करि सुरकाजू। अचल अवधपुर करिहैं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल। सुखबसिहैं अपने अपने थल॥
यह सब यागबलिक कहि राखा। मुधा न होइ देवि रिषि भाष

एक केवल यागवल्क्य हीनहीं अनेकब्राह्मण महर्षिगण जनकपुरमें भविष्यरामकथा कहाकरतेथे, जैसाकि बनगमनके समय श्रीसीताजीने श्रीरामजीसे कहाथा देखिये वा.रा. २।२६

अथापि च महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम्।
पुरा पितृ गृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे बने॥ ८॥
लाक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाऽहं वचनं गृहे॥९॥
कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यवाग्भवतु द्विजः॥११॥

होसकताहै उन कथाकहने वालोंमें निमिकुलके पुरोहित त्रिकालज्ञमहर्षि गौतमजी भी रहे हों जिनसे अहल्याने पूर्वमें रामचरित सुनरखा हो, क्योंकि निमिके समयसेही निमिकुल के पुरोहितरूपमें गौतमजी वरणकियेगयेथे। निमितो जनक-सीरध्वजसे बीसोंपीढ़ी पूर्व हुयेथे। ऊपरके दोअनुमान केवल अनुमानमात्रहीहैं उनकी पुष्टि प्रमाणदेकर नहीं कीजासकती, किन्तु नीचे दियेजानेवाले भाव अनुमानित नहीं अपितु आर्ष-ग्रंथ-प्रमाणकी आधारशिला पर सुविन्यस्त हैं। क्रमशः प्रामाणिक भावोंको सुनिये—

(ग) अहल्याको श्रापदेकर महर्षिगौतमजीने श्रापोद्धार

बतातेहुये श्रीरामजीके संबंधमें सभीबातें अहल्यासे बतादिया था जिसका संकेत वा० रा० १।४८ में ऐसाहै कि—

यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥३२॥
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभ मोह विवर्जिता।
मत्सकाशं मुदायुक्ता स्वं बपुर्धारयिष्यसि ॥३३॥

इसप्रकार पाषाणके तपः पुँज देदीप्यमानरूपसे प्रगटहोतेही जैसेही "धीरज मन कीन्हा" तैसेही तुरन्त "प्रभु कहँ चीन्हा" और जब प्रभुको पहचानलिया तो 'रावण रिपु' कहने लगी।

(घ) श्रीमद्भागवतमें वर्णनहै कि साढ़ेपाँचबर्ष के बालक ध्रुवके गालमें भगवानने अपना ब्रह्ममयशंख स्पर्शकरादिया तो इतनेहीमें भक्तप्रवरध्रुवजीको दैवीशक्ति प्राप्तहोगई जिससे उसीक्षण उन्हें परब्रह्म एवं आत्मतत्वका निर्णय प्राप्तहोगया। देखिये भागवत ४।९।४५

कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले।
स वै तदैव प्रतिपादितां गिरां दैवीं परिज्ञात परात्मनिर्णयः॥

भगवानने श्रीध्रुवजीके कपोलमें शंखका मात्रस्पर्श कराया था और अहल्याके मस्तकपरतो अपना चिदानन्दमय चरण ही रखदियाथा केवल किंचित स्पर्शमात्रही नहीं करायाथा।

सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी॥

तबभला अहिल्याको यदि परतत्व निर्णय परिज्ञातहोगया-वह प्रभुको चीन्ह-पहचानकर 'रावण रिपु' कहनेलगी तो उसे क्यों सन्देहसन्दोह बनायाजाताहै।

(ङ) जोव्यक्ति भगवत्कृपा-भक्ति प्राप्तकर लेताहै वह उसी

क्षण अनायासही त्रिकालज्ञ अथच सर्बज्ञ होजाताहै। इसतथ्य का उद्‌घाटन करतेहुये स्वयं श्रीरामजीनेही काकर्षि श्रीभुशुण्डीजीसे कहाथा कि जब— सब सुख खानि भगति तैं मांगी। तो अब अवशिष्ट ही क्या रहगया, अतः—

सब शुभ गुण बसिहहिं उर तोरे।

भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा। योग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

यहीबात अहल्याकेसाथ हुई अर्थात् अहल्या प्रेमअधीरहोकर जब प्रभु चरणोंपर गिरपड़ी और उसने प्रभुको तत्वतः पहचानलिया जान गई तब—'रघुपति कृपा-भगति पाई।'

श्रीरामजीकी कृपासे भक्तिपागई जिससेकि उसीक्षण अनायासही उसे सबका भेद ज्ञातहोगया जिससेकि वह 'रावण रिपु' कहनेलगी। जो लोग 'रावणरिपु' और 'जनसुखदाई' दोनोंको एक समासितपद बनाकर यहअर्थ करतेहैं कि विश्वमें रावणकेरिपु अर्थात् देवमुनि उनमें जो आपके जनहैं उनकेआप सुखदायीहैं आदि-ऐसेअर्थ केवल विद्वद्वाग्विलास मात्र हैं। (मानसमणि १६। १)

❋ शंका ४५ ❋

'अरुणचूड़ बर बोलन लागे।"

'उठे लखन निशिविगत सुनि अरुण शिखाधुनि कान।'

क्या उससमय जनकपुरकेलोग मुर्गी पालते और खाते थे? जब रामजी मुर्गेकाही शब्दसुनकर उठतेथे तो अनुमान कियाजाताहै कि महलके इर्दगिर्दमेंलोग मुर्गे पोसतेहोंगे और महलके इर्दगिर्द तो अच्छेहीलोग बसतेहोंगे। और स्यात्

खातेभी रहेहों, अतः मुर्गीका मांसखानेमें क्यादोषहै ?

(ख) विवाहकेबाद रामजानकी अयोध्यामें कितनेदिनरहे ? और रहनेपर राजठाटसे रहतेहोंगे और राजसीभोजनभी करतेहोंगे ? वाल्मीकीय अयोध्या कां०

मधुमूल फलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥ २०।२

के अर्थमें चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्माने 'मांसादिकभोजन छोड़दिया।' अर्थ किया है। तो क्या श्रीरामजी उससमयतक मांसादिका भोजनकरते थे ? (डा० राजेन्द्रप्रसाद सिन्हा)

❊ समाधान ❊

गुरुं ज्ञानानन्दं गरिमगुणगरिष्ठं गोपतिं,
मनुं मानवमान्यं मंत्रसद्वाच्यं मा पतिम्।
सदा सीतासार्द्धं सुजनसद्बन्धुसहितं,
नमामीशं रामं नयनमभिरामं नरपतिम् ॥

विष्णुगुप्तकौटिल्यने अपने कौटिलीयअर्थशास्त्रमें 'विनयाधिकारिकके इक्कीसवें अध्याय आत्मरक्षाप्रकरणमें राजाओंके नियमोंको बतलातेहुये लिखाहैकि अग्नि और पक्षियोंके द्वारा भोजनकी नित्यपरीक्षा करके तब राजाको कोई खाद्यवस्तु खानीचाहिये—

'तद्राजातथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा।'
(कौटिलीय अर्थशास्त्र० १।२१।१८।६)

पक्षियोंमें चकोर, कबूतर और मुर्गे द्वाराही भोजनमें विषकी सद्यः सफलपरीक्षा उत्तमरूपसे होतीहै, ऐसा सद्वैद्यों एवं प्राणिविद्या विशारदोंका सुपरीक्षित मतहै। मनुनेभी राजाओंके लिये लिखाहैकि–सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यात्। (मनु० ७।२१७)

अतः राजाधर्मानुसार-राज-नियमानुसार राजाओंको विविधप्रकारका पक्षीपालना आवश्यकहै, और सभीपक्षियोंमें मुर्गाही एक ऐसापक्षीहै कि जो ठीक नियतसमयसे रात्र्यन्तमें नित्यही उच्चस्वरसे बोलताहै। अतः अरुणशिखाकाही बोलना कहागया। उसवक्त क्या किसीभीसमय आर्य हिंदूलोग मांसनहीं हीखातेथे। क्योंकि मांसभक्षणतो मनुष्यकेलिये प्राकृतिकनियम ही नहीं है। (देखिये इसीग्रन्थ का पृ० १००से ११० तक किसी समयभी कोईभी पक्षी पोसी जासकती है पक्षी पोसनेमें कोई दोषनहींहै, दोषतोहै पशुपक्षिके मांसखानेमेंहै । धार्मिकताकी दृष्टिसे दोषतो स्मृतियोंमें देखिये जहाँ किसी मांसका महान्दोष और विभिन्न प्रायश्चित्त वर्णितहैं । स्वास्थ्यकीदृष्टिसे मांस भक्षणकादोष वैद्यक एवं निघंटु ग्रन्थोंमें देखिये। पर आपतो डाक्टरहैं इसलिये आपको अमेरिकाके डाक्टरों की राय (विवेकानन्द मिशन अमेरिकासे प्रकाशित) पुस्तकोंमें पढ़नी चाहिये जिसमें किसीमांससे क्याहानिहै विस्तारसे बतायाहै उससमय कोईभी आर्यहिंदू कभीभी किसी प्रकारकामांस नहीं खातेथे। पतानहीं आपकिसआधारपर अयोध्याबासियों और जनकपुरबासियों आर्योंकेलियेमांस भक्षणका अनुमान करतेहैं

श्रीरामजीका जागना मुर्गेकेबोलनेपर आधारितनहींथा अपितु नियमानुसार जबश्रीरामजी नित्यजगजातेथे उसकेबाद मुर्गे जगकर बोलतेथे प्रथम- प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। और तब कहागयाकि-अरुणचूड़बर बोलनलागे । इसीतरह जनक पुरमेंभी पहले उठे लखन निशि बिगत० तब उसकेबाद "अरुण शिखाधुनि" कानसे सुनी। यही समीचीन अर्थ है।

(ख) वा०रा० आरण्यकांड सर्ग सैंतालीसमें श्रीजानकीजीका वचनहै कि– विवाहके बाद मैं बारह सालतक अयोध्या रही उसकेबाद पतिके संग बनको आई—

उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने ।
भुँजाना मानुषान्भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥४॥

श्रीरामजी जन्मसे लेकर बनबासकी आज्ञासे एकक्षण पूर्वतक राजाओंकेठाटसे रहतेथे और राजाओंके योग्यभोजन भी करतेथे और बनबाससे लौटनेपरतो सदैवही राजठाटसे रहते तथा राजाओंका विहितभोजन करतेथे । इसीग्रन्थके सुन्दरकांडका अपनीही शंकाके समाधानमें 'कन्द मूल फलै- र्जीवन् ।' श्लोक का अर्थ देखिये जोकि महा विद्वान पं० श्री शिवसहायजी ने 'रामायण शिरोमणि' टीकामें लिखाहै, और वहीं भगवान् वेदव्यासजीकृतभी 'आमिष' शब्दकी व्याख्या देखिये जोकि उन्होंने पद्मपुराणमें कियाहैकि 'मुनिजन कथित बर्जित मांसादिकभोजन' क्या क्या है ।

❋ शंका ४६ ❋

"सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।"

नारद बचन कौनसा है ? कब कहागया था ? किस पुराण या अन्य सद्ग्रन्थमें प्रमाणहै ? (रामेश्वरप्रसाद पटरैया)

❋ समाधान ❋

सर्वेश्वरीं सकलतत्वमयीं मनोज्ञां
विद्येश्वरीं विबुधबृन्दविमृग्यमानाम् ।
मात्रात्मिकां निखिलमंत्रविभूतिदात्रीं
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम् ॥

किसी पुराण या आजतकके उपलब्ध श्रीगोस्वामीजीसे पहिलेके किसीग्रंथ या रामायणात्मक प्रवन्धोंमें श्रीसीताजी कृत गिरिजापूजन नहींहै। (हिंदुत्वमें गौड़जीने कुछ ग्रन्थके नाम गिनायेहैं परन्तु सिवाय धनराजसूरकी कल्पनाके उन ग्रंथोंका कहीं अस्तित्वही नहींहै न कभी थाही) मैंने स्वयं पं० धनराजीसे पूँछा तो उन्होंने कहा मैं तो कवि हूं और कवि कल्पना प्रधान होता ही है। कई बर्ष पूर्व मैंने मणिमें कईबार और मानससंघसे प्रकाशित 'मानससिद्धान्त' नामक पुस्तकमें बतायाहै कि सारा पुष्पबाटिका प्रसंग 'क्वचिदन्य-तोऽपि' मेंहै अर्थात् यह कविकी कल्पनाहै और कल्पनातो कल्पनाही। अतः (सुमिरि सीय नारद बचन गिरिजापूजनादि) प्रसंग का प्रमाण किसी प्राचीन ग्रंथ या पुराणोंमें ढूँढ़ना अभी तक तो खपुष्पोपलब्धिवत् ही होरहाहै। और अपनी कल्पना से कोई कहानी गढ़कर कह एवं लिखदेना दूसरीबातहै तथा प्रमाण पूर्वक कहना और लिखना दूसरी बात। मा.म.७।१२

* शंका ४७ *

जहँ बिलोक मृगसावक नयनी। जनुतहँ बरिसकमल सितश्रेनी

अर्थात् सीताजी जिधरदेखतीथीं उधर ऐसा मालूमहोता था कि श्वेतकमलोंकी कतारबरसरहीहैं। क्या वास्तवमें श्वेत कमलोंकी कतारबरसतीथी अथवा केवलउपमामात्रके लियेही यहचौपाई कहीगईहै, क्या उनकीआँखोंमें यहशक्तिथी ?

(पं० बाबूराम रिसिया)

* समाधान *

लोकेश्वरीं त्रिभुवनैकविभूतिदात्रीं,
पात्रीं प्रमोदपरमां परतत्वभूताम्।

कन्दर्पकेलिनिरतां नवयौवनाढ्यां,
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम् ॥

दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दोनोंतरहका सिद्धान्तहै कि नेत्र गोलक तेजात्मक रश्मियोंका कोशहै । पलकोंके पूर्णरूपसे खुलेरहनेपर प्रतिक्षण नायन रश्मियाँ निकलाकरतीहैं नेत्रोंमें जब जिस रंगका पूर्णविकास रहताहै तब नायन रश्मियाँ उसी रंगकी मानीजातीहैं । स्वस्थपुरुषोंके नेत्रगोलक श्यामपुतलियों के अतिरिक्त श्वेतारुणमिश्रित होतेहैं निश्शक्तावस्थामें वे गोलक पांडुरमिश्रित श्वेतहोजातेहैं अरुणिमाका ह्रासहोजाता है और सशक्तावस्थामें भावविशेषके आविर्भावहोनेपर कुछ कालकेलिये श्वेतताके स्थानपर भी अरुणिमाका अधिकार होजाताहै। इसीतरह युवतीस्त्रियोंका नेत्रगोलक पुतलियोंके अतिरिक्त श्वेतहोताहै ।

तिय दृग पुतरी श्याम, मनहु जलज मधुकर लसे ।
की धौं शालग्राम रूपे के अरघे धरे ॥
(रहिमन बिलास शृङ्गार सोरठा ६)

श्यामं सितं सुदृशोः न दृशोः स्वरूपं
किं तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च ।
नो चेत् कथं निपतनादनयोस्तदैव
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥
(भामिनी विलास, शृङ्गार बिलास २ । ६२)

स्वाभाविक रूपेण वह श्वेतही रहताहै कारणविशेषसे कुछसमयके लियेही लालहोताहै । भगवान् कृष्णचन्द्रके नेत्रों के वर्णनमें बिलग्रामी (हर्दोई) सैयद गुलामनबी 'रसलीन' ने सं० १७६४ वि० में अङ्ग दर्पण में लिखा कि—

अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥

परन्तु आजकल कुछलोग अनभिज्ञतासे इसदोहेको स्त्रियोंके नेत्रवर्णनमें लेनेलगेहैं। पुरुषोंकानेत्र अरुणकमल और स्त्रियोंकानेत्र श्वेतकमल इसीसे कहा जाताहै। अस्तु सीताजीके नेत्रगोलक श्वेतकमलवत हैं "सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान भवेत्।,, न्यायानुसार श्वेतांशकीअधिकताके कारण श्वेतकमलकहा। श्रीसीताजी (सखियाँभी) जिधर देखतीहैं उधर अन्वेषणार्थ कुछदेर तक देखतीरहजातीहैं त्रटिकसा लगजाताहै। इतने समयमें नायनरश्मियोंके असंख्यों परमाणु नेत्रसे निकलकर दृष्टिपथमें व्याप्त होजातेहैं। श्वेतकमलवत् आँखोंके ज्योति-परमाणु भी श्वेतकमलवतही होंगे इसीसे वहाँ 'बरिस कमल सित श्रेनी।' कहा नेत्रोंसे निकली हुई नायन-रश्मियाँ परमाणुरूप होनेसे किसीके दृष्टिपथमें नहीं आतीं इसीसे "जनु, कहा। (मानसमणि ५।२)

❋ शंका ४८ ❋

पुष्पवाटिकामेंही श्रीसीताजीने गौरीजीकी पूजा कैसेकीहै जबकि वनयात्रामें सतीने सीतावेषलियाथा

(लछिमनदास अग्रवाल चिरमिरी)

❋ समाधान ❋

रुद्र एकादश एक शशी शिर धइ समता किमिकै सब पावैं।
सीय पदैनख काटि दशौ सरजू जब जाइ सखीन बहावैं॥
धाइ तबै दस रुद्र धरैं शिर कान्तिमहाशशि अर्ध सुहावैं।
यहिहेतु कुमार'महाशिवजू द्वितियाशशिको नितशीश सजावैं॥

श्रीरामचरितमानसमें वर्णित श्रीजानकीजी द्वारा गिरिजा पूजनको मैं क्षेपक नहींमानता, परन्तु इतना मानताहूँ कि यह प्रसंग गो० तु०दा० जीका कल्पितहै, गोस्वामीजीसे पूर्व किसी भी ग्रन्थमें सीताकृत गिरिजापूजनकी बातनहींहै । औरकी जानेदीजिये रामचरितमानस रचनाकेपूर्व जानकीमंगलकी रचनाकाल सं० १५८२ वि० तक स्वयं गोस्वामीजीनेही सीता द्वारा गिरिजापूजनकी कल्पना नहींकीथी । जिनलोगोंने प्रसन्न राघवनाटकको अच्छीतरह नहींदेखाहै सुनाभरहै वेलोग प्रसन्न राघवका नामलेलेतेहैं । पर प्रसन्नराघवनाटकमें साहित्यशास्त्रा-नुसार पूर्वानुराग निष्पत्तिकेलिये बाटिकामें नायक और नायिकाका एकदूसरेको देखना देखायाहै वहाँ गिरिजापूजनका संकेतभी नहींहै । इसीतरह जिसको 'पुनीतपुरानीकथा'होनेका डिमडिमघोष किया गयाहै वह प्रतापभानुकी कथाभी अभी तक श्रीतुलसीसे पूर्व किसीभी ग्रन्थमें अन्वेषकोंको नहींमिल सकी । अतः गिरिजापूजन और प्रतापभानुप्रसंग "क्वचिदन्य-तोऽपि" के रूपमें लिखकर कविके अपने विशेषाधिकारका उपयोगहै । इसकाभी कारणहै—

साम्प्रदायिक इतिहासज्ञोंसे अविदितनहींहै कि वैष्णवोंकी अनादि चारसम्प्रदायोंमें एक श्रीसम्प्रदाय नामसे अत्यन्त विस्तृतरूपमें चलीआतीहै । श्रीराम, सीता, हनुमान, ब्रह्मा, वशिष्ठादि इसके पूर्वाचार्यहैं । विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीमें जब भगवान् श्रीरामजीने स्वयं श्रीरामानन्दाचार्य नामसे आविर्भूत होकर श्रीसम्प्रदायका नेतृत्व ग्रहणकरके इसके क्षेत्र को तप, विद्या धन,जनआदि सभीसे विकसित करदिया तबसे

श्रीसम्प्रदायका दूसरानाम श्रीरामानन्दसम्प्रदायभी पड़गया। इसी सम्प्रदायके दार्शनिक सिद्धान्तोंको लेकर आजसे लगभग एक सहस्र वर्षसे कुछ पूर्व अर्ध*श्रीवैष्णववेषमें नवीनपंथने कायमहोकर अपनेको अनादि श्रीसम्प्रदाय नामसे घोषितकरना शुरूकिया और उसीपंथको एकमात्र मुक्तिका ठीकेदार करार देकर संसारके सभीदेवताओंको हेय त्याज्य बतलाकर निन्दा करना प्रारम्भकिया, खासकर के शिव और दुर्गाकी। भारतवर्ष में वैष्णवोंकी तरह शैवों और शाक्तोंकीभी बाहुल्यता अति-प्राचीन कालसे चलीआईहै परन्तु कभीभी वैष्णवों शैवों और शाक्तोंमें परस्पर विद्वेष नहींहुआथा। जब वह नवीन अर्ध वैष्णवपंथ शिव दुर्गा, रुद्राक्ष, भस्म आदिकी निन्दा करने लगा यहाँतककि अपने ग्रंथोंके अतिरिक्त प्राचीनग्रंथोंमें भी जहाँतक होसका सबकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करनेका प्रयत्न करनेलगा तब शैव और शाक्तभी प्रत्युत्तरस्वरूप वैष्णवों की निन्दाकरनेलगे। धीरेधीरे इस निन्दाव्यापरने घोरविरोध का रूपधारण करलिया। यहाँतककि उन अर्ध-वैष्णवोंकी लगाई आगमें सम्पूर्ण चतुः साम्प्रदायिक विशुद्ध वैष्णवोंकोभी

---

* ऊर्ध्वपुण्ड्रं भालदेशे कण्ठे तुलसिमालिका। वाह्वोःवैबाण चक्राद्यास्ते वैष्णवाःप्रकीर्तिताः॥ वैष्णवधर्म मंजरी॥
जिनके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र, कण्ठमें तुलसीकीमालिका अर्थात् कण्ठी और बाहुमूलमें बाण धनुष,शंख, चक्र आदि भगवदायुध सर्व या कोई आयुध चिन्हितहों वे विशुद्धवैष्णवहैं, और जो इन तीनोंमें किसी एकसे हीन हों वे अर्धवैष्णवहैं।

झुलसना पड़ा । चौदहवीं शताब्दीके आरंभमें भगवदवतार श्रीरामानन्दाचार्यजीने उस आगको प्रायः शान्तसा करदिया था । आपके स्वधाम पधारनेपर आपके कईशिष्योंनेभी अपने अपने सौम्याचरणसे इसआगको भड़कने नहींदिया । इसतरह लगभग ढाईसौबर्ष यहआग दबीपड़ीरही, परन्तु सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें जब श्रीवैष्णवोंने उन अर्धवैष्णवोंको अपनी दयालुतासे अपनासा लिया तब उन अर्धवैष्णवोंने वैष्णव शैव द्रोहाग्निको पुनः प्रज्वलित करदिया और अपनेको श्रीवैष्णव तथा अनादि चतुःसाम्प्रदायिकवैष्णवोंको 'साधारणीवैष्णव' कहनेलगे । यद्यपिकि साधारणीवैष्णव कहनेसे चतुःसम्प्रदायिकवैष्णवोंका कुछ बिगड़ा नहीं परन्तु उन अर्धवैष्णवोंद्वारा प्रचारित शिवदुर्गा एवं देवीदेवताओंकी निन्दाने घोरअशांति फैलादिया यहाँतककि शैवों और वैष्णवोंमें यदाकदा मारकाट भी होनेलगी । इस आगको सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें जयपुराधीशके बंधु श्रीबालानन्दाचार्यने पूर्णरूपेण शमनकरदिया वैसेतो उन्हीं अर्धवैष्णवोंकेकारण उसआगकी एकाधचिनगारी कभीकभी आजभी चमकउठती है ।

श्रीबालानन्दाचार्यके पूवभी महात्मालोग उसविरोधाग्निके शान्तकरनेमें लगेरहे । श्रीअनंतानन्दाचार्यजीकेप्रशिष्य श्रीसंप्रदायके उज्ज्वलरत्न परमशान्तिप्रिय गोस्वामीश्रीतुलसीदासजी महाराजनेभी सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें अपनेढंगसे स्थायी शान्तिका सफल प्रयत्नकिया । आपने अपने अनेक सद्ग्रन्थों में अनेक देवीदेवताओंकी वन्दनातो कियाही, अपने उपास्य देव परब्रह्म श्रीसीतारामजीसेभी शिव पार्वती आदिका वंदन

पूजन कराया। यद्यपिकि रामावतारकालमें शिवाका सतीरूप थाही परन्तु वर्तमानकालमें गिरिराज-नन्दिनी पार्बतीजीही सर्वत्रपूज्यहैं। एतदर्थ द्रोहाग्नि शमनकेविचारसेही मानस एवं गीतवलीआदिमें गिरिजापूजन करायागयाहै। रामचरित-मानसके आरम्भमेंही आपने स्वीकारकियाहै कि नानापुराण निगमागमके सिद्धांतसेसमन्वित श्रीशंकरकृत रामचरितमानस का भाषानुवाद करतेहुए यत्रतत्र 'कचिदन्यतोऽपि' अर्थात् नाना पुराण निगमागमादिके सिद्धान्त कथानक आदिके अतिरिक्त कुछऔरभी सम्मिश्रण करदूंगा। वह सम्मिश्रण गिरिजापूजन आदिहै

श्रीरामावतार इस श्वेतबाराहकल्प के सातवें वैबस्वत मन्वन्तरके चौबीसवें त्रेतामें स्वायम्भूमनु-दशरथके घर हुआ था। इसी पुस्तकके ६१ वें पृष्ठपर प्रमाण पढ़लीजिये। उस समय शिवपत्नी उमा-सती थीं। उनकापार्बतीरूप दूसरा-जन्म द्वापरमें हुआथा। देखिये स्कन्द०पु: खण्ड १ अ० १६७

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे।
दक्षापमानात्संजाता तदा पर्बतपुत्रिका ॥९॥
द्वापरे तु द्वितोये वै दत्ता त्वं पर्बतेन मे ॥१०॥

'द्वितीये अर्थात् द्वितीयेजन्मनि' शिवपार्वतीका सबसे बढ़कर महत्व-ऐश्वर्य प्रतिपादन करनेवाला बहुत वृहत्ग्रन्थ शिव-महापुराणभी रामावतार कालमें सतीहीका होना कहताहै, गिरिजाकानहीं। गोस्वामीजीसे पूर्बके किसीभी ग्रंथमें श्री-सीताजी करके गिरिजापूजन नहींमिलता।

गोस्वामीजीके बादसेही इसपर अनेक कथायें गढ़करलोग

'सुमिरिसीय नारद बचन' आदिकी संगति लगानेकी चेष्टा करनेलगे। पर कल्पनातो कल्पनाही। प्राचीनप्रमाणतो अभी तक खपुष्पोपलब्धिवत् ही होरहाहै। विद्वन्मान्य प्राचीन अथच प्राप्य ग्रंथोंमें प्रमाण मिलजानेसे मुझेभी माननेमें कोई हर्ज नहीं रहेगा। कुछलोग यहभी कहदेतेहैं कि जैसे शिव बिबाहमें गणपतिपूजन हुआ पश्चात् वही गणपति शिवपुत्रहुये। इसी तरह त्रेतान्तमें गिरजापूजनहुआ वही अगले द्वापरमें पुनः पार्बती हुईं। आदि

पर ऐसा कहनेवाले उस तत्वको ठीक ठीक समझतेनहीं, यदि समझते तो ऐसा कुचोद्य न करते। वह तत्व यहहैकि पुराणोंमें अनेक बिभिन्न व्यक्तियोंका गणपति होना बर्णितहै। (देखिये पिछलासमाधान पृष्ठ ८८ से ६५ तक) परंतु सती और पार्बती दोनों एकही व्यक्तिहैं पदासीन नहींहैं और इसीसे दोनोंका एककालमें रहना बर्णितनहींहै अतः सतीकी बर्तमानता में तो पार्वती पूजनकीबात सुरअनादित्वके रूपमें किसीतरहभी संघटित हो नहीं सकती, अपितु कबिकल्पनाही इसकाहेतुहै और कबिकल्पनाका कारण ऊपर कहागयाही है। जिसे दस से सत्रहवीं शताब्दी तकके इतिहास जाननेवाले इतिहासज्ञ लोग भलीप्रकार जानतेहैं। (मानसमणि ५।१)

* शंका ४६ *

'बिनय प्रेमबश भई' भवानी। खसीमाल मूरति मुसुकानी॥'

माला क्यों गिरी और कौन मूर्ति क्यों मुसुकाई ?

(लक्ष्मीधर पाठक)

* समाधान *

पद्मावतीं पद्मदलायताक्षीं,
पद्मप्रियां पद्मदलोपविष्टाम् ।
पद्मेश्वरीं पद्मजवन्दितांघ्रीं,
नित्यंनतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुशीताम् ॥

क—मालागिरिनहीं अपितु दीगईथी गोस्वामीजीने खसी शब्दका अर्थ देना कियाहै, यथा—मूरतिकृपालु मंजुमाल दै बोलतभई० । (गीतावली)

जिस तरह "धुवाँदेखि खरदूषनकेरा" में धुवाँ शब्दका अर्थ अग्निविकार धूम न होकर वहाँ प्रसंगवशात् मृत्युहै । उसी तरह 'खसी" शब्दका प्रसिद्धअर्थ गिरना न होकर गीता-वलीके अनुसार "देना" प्रसंगानुकूल है । अर्थात् माला देकर मूर्ति मुस्कराकर बोली—'बोली गौरी हर्ष उर भरेऊ' ।

ख—गिरिजा की पाषाण मूर्ति मुसुकाई ।

ग-मुसुकानेका कारण हार्दिक प्रसन्नताजन्य कृपाहै, यथा-हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकाशा । सूचत किरन मनोहर हासा ॥

मूर्तिके हँसनेबोलने आदिमें जो अनिष्टकी बात श्रुतिस्मृतियोंमें कथितहै, वह मूर्तिगत देवताके अप्रसन्न होकर हँसने बोलने आदिके कारणही है । प्रसन्नतामें अनिष्टकैसा ? मूर्तिके प्रसन्नहोकर हँसनेबोलने आदिमेंतो सदैव कल्याणही होताहै भक्तमालों एवं पुराणोंसे इसके अनेक उदाहरण दियेजा सकते हैं । और यहाँ गौरीका प्रेम एवं हर्षके वशहोकर मुस्काने तथा बोलने की कल्पनाकी जा रहीहै । (मानसमणि ३।१२)

* शंका ५० *

प्राचीदिशि शशिउगेउ सुहावा। सियमुखसरिस देखि सुखपावा

इस चौपाईमें भगवान रामचन्द्रजीने चन्द्रमाको देखकर सीताजीके मुखकी समानता और तुलना दी है। इससे बिदित होताहैकि उन्होंने पूर्णचन्द्र देखकरही उसको सीताजीके मुखारबिन्दकी तुलनाकी। क्षीणचन्द्रनहींथा और वह कार्तिकीपूर्णिमा का पूर्णचन्द्र सिद्धहोताहै। फुलवाड़ीसे लौटनेके दिनही यह उपमा दीगईथी। उसके बादही धनुषखंडन हुआहै। राजे-लोग एकत्रितथे, क्योंकि लक्ष्मणजीनेभी सूर्यसे भगवानकी तुलना देतेहुए आयेहुये राजाओंको श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे बलहीन होनेकी उपमा दी है। उपर्युक्त चौपाईके तीसरेदिन धनुषखंडन होनेपर बिबाहपत्र अयोध्याभेज दियागया तो अनुमानतः २० दिनोंकेबाद अगहनसुदी ५ को बिबाह हुआ। बीच के २० दिन उन्हें किसकार्यमें लगे जो इतनेदिनकेबाद बिबाह हुआ अथवा वह पूर्णचन्द्र कार्तिकका नहीं दूसरे महीनेका रहा होगा। (बाबूराम शर्मा रिसिया)

* समाधान *

राम प्रिये तव पाँयनकी रसकी उपमा कहुं नेकु न तूलैं।
तौहू जबै युत नूपुरभे तबहूँ उपमा कबि देत सु भूलैं॥
नवनीरज पल्लवसे निकसी कलिकामधि भृङ्गरसैं अनुकूलैं।
सो सुनिके मन रामकुमार अनन्दित प्रेमहिंडोलन भूलैं॥

पुष्पबाटिका प्रसंगकी कल्पना चाहे कार्तिकपूर्णिमाको मानिये चाहे आश्विनपूर्णिमाको, वह काल्पनिक प्रसंग पूर्णिमाकाही और उसी पूर्णिमाके दूसरेदिन अर्थात प्रतिपदा

को धनुर्भंग हुआथा तथा प्रतिपदाहीको दूतके अयोध्या जानेमें जोसमय लगाहो परन्तु दूतके अवध पहुँचनेपर तुरन्तही 'संभवतः दूसरे दिन ही' बरात चलपड़ी । रास्तेमें चाहेजो समय लगाहो फिरभी "प्रथम बरात लगनते आई।" और वहप्रथम दो-एक घण्टे या दोएक दिनका नहीं प्रत्युत "गयेबीति कछुदिन यहिभाँती।" तब जाकर 'मंगलमूल लगनदिन आवा।" और वह दिन "हिमरितु अगहनमास सुहावा।" हैऔर यही पंक्ति बतातीहै कि जब बारातआईथीतब न हिमरितुथी और न अगहनमास और यही बारातागमनका प्रसंगभी बताताहै कि पुष्पवाटिका प्रसंगकी कल्पना कार्तिककी पूर्णिमाका प्रसंग नहींहै अपितु आश्विनपूर्णिमाका प्रसंग होसकताहै । बिबाह से अधिकदिन पहिलेसेही बरातीलोग जनकपुर जाकर "नित्य नवीन पहुनईका आनन्दोपभोगके अतिरिक्त दूसराकार्य नहीं करते थे। [मानसमणि ६। ६]

*** शंका ५१ ***

जौ छविसुधा पयोनिधिहोई। से 'सीयसमतूल।' तककी पंक्तियोंमें 'छवि रूप, शोभा, शृङ्गार, सुन्दरता' आदि एकही पर्यायवाची शब्दोंको विभिन्न उपमामें क्योंरखा ? कृपया इसे भावपूर्ण समझाइये। मानसांकके शाब्दिकअर्थसे स्पष्टता नहीं झलकती। कहीं मेरे ऊपर आप नाराज न होजायँ कि यहक्या पूछदिया। मैं जानना चाहताहूँ । इसीसे पूछाहै ढीठताको क्षमाकरें। (रामरक्षित शुक्ल, बनारी, बिलासपुर)

*** समाधान ***

बाणी सनी रति सिन्धुसुता नित सीय पदांगुलि पै सिरटेकें।

कबरीमणि चन्द्रिका नासामणी फलफूलदलोसके गुन्दके लेखैं॥
मानो परे दल शय्या सियापद सेवत ललित टारि निमेखैं।
शशिभानुप्रभालखिलाजितज्योति'कुमार'सियापदध्यानमेदेखैं॥

भगवान् श्रीरामजीके दिव्य माधुर्यैश्वर्यात्मक श्रीविग्रहके रूपका नाम छबिसुधापयोनिधि है—

'छबि समुद्र हरि रूप विलोकी।' 'सुधा समुद्र समीप विहाई।'

चतुर्दश रत्नोंके लिये देवदानवोंसे जो समुद्र मथागयाहै वह प्राकृत विकारास्पद समुद्रहै किंतु श्रीभगवद्विग्रह तो सर्वथा-

'चिदानन्दमय देह तुम्हारी। रहित विकार ... ...।'

है परन्तु उस श्रीविग्रह समुद्रको काम नहीं मथन कर सकता उस विग्रह से तो—

लाजहिं तनु शोभा निरखि कोटि कोटि शत काम।

यहाँतककि उस विग्रह के—

अङ्ग अङ्गपर बारियहि कोटि कोटि शतकाम॥

अतः आरंभका कहागया 'जौ' शब्द 'शोभा, मार' सबके साथहै। परन्तु कच्छपके साथ नहीं है क्योंकि समुद्रमंथन काल में कच्छपविग्रहतो स्वयं भगवाननेही धारणकियाथा इसीलिये कच्छपको 'सोई' कहा। यद्यपि समुद्रमंथनकालमें भगवान्‌का कच्छपविग्रह रूपमय तो था परन्तु परमरूपमय नहींथा और यहाँ 'परमरूपमय' होना परमावश्यकहै। इसीसे समुद्रमंथनके सबअङ्गोंको बदलतेहुयेभी कच्छपको नहींबदला और यदियहाँ 'परम रूप मय' न कहतेतो कच्छपावतारमें सौंदर्यका अभाव सूचितहोता। भगवान्‌से सुन्दर और कौनहै तोभी परमरूप मय' का अङ्क्षा लगाही दिया। क्योंकि यदि 'वे कच्छप' परम

रूपमय होतेतो सिंधुसुताका जयमालइन्हीको मिलता भगवान् के देवविग्रहका अन्वेषण स्वयंवरमें नकिया जाता। अस्तु

यहप्राकृत समुद्र प्रथमसेही था कच्छपावतार पीछेसे हुआ तब बासुकीरूपी रस्सीसे वेष्टित करके मंदराचलको भगवान् कच्छपकी पीठपर रखकर देवता एवं दैत्योंने मिलकर समुद्र-मंथनकिया तब लक्ष्मीका प्राकट्यहुआथा। इसीक्रमसे यहां कहरहेहैं।

शोभारजु०—प्राकृत समुद्रमंथनमें महाविषधर बासुकी रस्सी बनेथे पर यहां शोभाही रज्जुरूपमेंहो शृङ्गार मंदराचल हो और काम अपने हस्तकमलसे मंथनकरै। प्रथम कच्छप-कहकर तब मथना कहतेहैं क्योंकि जब कच्छपरूपमें भगवान्ने अपनीपीठपर मंदरको संभाला तब मथते बना। प्रथम शोभा कहकर पीछे शृङ्गार कहा इससे शोभाकी बड़ाईदिखाई कि शोभाप्रथमसेहीहै तब बादको शृङ्गारहोताहै और बिना शोभा के कितनाभी शृङ्गारकरै पर सौंदर्यखिलतानहीं परन्तु शोभाका सौंदर्य बिनाशृङ्गारके ही मन्मथकोभी मथे डालताहै। यदि शृङ्गारकरनेपर शोभाहो तबतो शोभाका कोई मूल्यही नहींरह जाता। जैसे पयोनिधि और कच्छपका संयोगहै वैसे छबि और रूपका संयोगहै। जैसे रज्जु और मंदरका संयोगहुआ रस्सीमें मंदर वेष्टित कियागया ऐसेही शोभा और शृङ्गारका संयोगहोताहै शोभाका उत्कर्ष बिना शृङ्गारकेभीहै परन्तु शोभा केबिना शृङ्गार शोभाविहीनहै। कामके मथनेका भावयहकि यहाँ सुन्दरताका प्रकरणहै और काम सभी देवतोंसेसुन्दर है इससे कामका मथना कहा। हाथका कमलविशेषणदिया।

'निज' इसलिये कहाकि कामदेव अपनेसहकारियों द्वाराही सारेब्रह्माण्डको उद्वेलितकिये रहताहै। दूरसेभले बाणमारकर उद्वेग उत्पन्नकरदेताहै परन्तु किसीको अपनेकरसे प्रत्यक्षस्पर्श पूर्वक प्रनोदित नहींकरता।

'लछिमन देखतकाम अनीका। रहइ धीर तिनकै जगलीका॥'
तब आपन प्रभाव बिस्तारा। निज बश कीन्ह सकलसंसारा॥

आदि. परन्तु यहाँ सहकारियोंसेही काम न चलेगा वह अपने कर कमलसे मथै। 'छबि, रूप, शोभा, शृङ्गार और सुन्दरता' ये पाँचों शब्द कुछ अंशोंमें पर्यायबाची होतेहुयेभी इनमें सूक्ष्मप्रभेद साहित्यदर्शियोंने देखाहै इसीलिये उनसबका अलग-अलग अर्थ कियाहै। जैसे—

छविः —'द्युतिश्छबिरित्यमरः।' 'छबिः लावण्यमितिवर-रुचिः।' छ्यति छिनत्यसारमिति वा, छो छेदने० दि०प०अ० (छिदिर्द्वैधीकरणे रु० उ० अ०)

उत्तमतापूर्वक शरीरकी स्वाभाविक (सुडौलता) गढ़न और आकृति-लावण्यका नाम 'छबि' है।

रूपः —'रूपोदार्यगुणैर्पुंसां दृष्टि चित्तापहारकः।'
(बाल्मीकि रा० अयो० १।१३)

'क्षणेक्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।'
(शिशुपालवध ४।१७)

चुम्बकायःकणन्यायैर्दूरादवकर्षको बली।
चक्षुषां सगुणो रूपं शाणः स्मारशरावलेः॥
(भगवद्गुणदर्पण २०।१)

जो तेज स्वाभाविकही-देखनेमात्रसे द्रष्टाकीदृष्टि और

चित्तवृत्तिको अपनीओर खींचले एवं जिसमें प्रत्येकक्षणमें नवीन नवीन आकर्षक रमणीयता भासितहो उसी तेजोमय प्रकाशका नाम रूपहै।

शोभा — सुखमा परमा शोभा० (अमरकोश)

कान्तिः शोभेच्छयोः स्त्रियाम् (सुधा व्या० अमरः)

अंगेन येन येनैव दृष्टमात्रेण पश्यताम्।
सुखमुत्पद्यते सद्यः शोभनं तत्र तत्र च॥

(भगवद्गुणदर्पण १८।३)

अंग अंगकी जिस छटाको देखतेही द्रष्टाको सुखप्राप्त होते उसकानाम शोभाहै– 'देखिसीय शोभासुखापावा।'

शृंगारः—'शृङ्गारभंगमण्डनम्।' दूसरेके चित्ताकषक-पवित्र एवं स्वच्छ मण्डन अलंकारधारणका नाम शृङ्गारहै।

सुन्दरता सौन्दर्यः— 'लोकोत्तर लावण्यवदंगत्वं सौंदर्यम्।'

'यथार्ह सन्निविष्टानामंगानां रुचिरत्विषाम्।
शोभोत्कर्षैक संदर्भः सौंदर्यं सुरसंमतम्॥

(भगवद्गुणदर्पण १८।१)

जिसमें छबि, रूप, शोभा और शृङ्गार सब एकत्रहों और जिसप्रकार धारोष्णदूधमें बिनाकुछ मिष्टपदार्थके सम्मिश्रणके ही स्वाभाविक सुरुचिकर स्वाद होताहै वैसे सुरुचिकर किन्तु लोकोत्तर अंग लावण्यकानाम सुन्दरताहै।

सुखः—'स्वभावत एवानुकूलत्वं सुखत्वम्।'

'तद्यथा प्रिययास्त्रिया संपरिष्वक्तो न वाह्यं किंचन वेद नान्तरमेव।' [वृहादारण्यकोपनि० ४-३-२१]

'सुप्त प्रबुद्धः-सुखमहमस्वाप्सम्-इति प्रतिसंदधाति
इतिसुखरूपं भवति।'० (तत्वत्रयः लोकाचार्य)
जो सर्वथा स्वाभाविकरूपसे अपने अनुकूलहो वहसुख कहाताहै
समतूलः—'सदृशतुलना, उपमा, समानता, बराबरी, प्रतिमानता। दोहेकाअर्थकि-इसप्रकार जब सुन्दरता और सुखकी मूल एवं सुन्दरता और सुखहीहै मूलजिसका ऐसी लक्ष्मी उत्पन्नहो तोभी कविलोग बहुतही संकोचकेसाथ श्रीसीताजीकी तुलनामें उनकी उपमादेंगे।

व्याख्या—छविसुधा, परमरूप शोभा, शृङ्गार और काम, लक्ष्मी उपजानेका यह साधन सुन्दरहै इसीसे सुन्दरतामूल-कहा। साधन साध्य एवं साधक सभीसुखात्मकहैं इसीसे सुख-मूलकहा। इस प्राकृतसमुद्रके मंथनसे सभीको सुखनहीं हुआ। समुद्र तथा कच्छपकोभी सुखनहीं हुआ—

'महाद्रिणा क्षोभित नक्रचक्रम्।' (भाग० ८।७।१३)

'कमठ कठिन पीठि घट्टापर्यो मंदरको—
आयोसोई कामपै करेजो कसकत है।' (कवि०लं० १६)

रज्जुरूपबासुकी तथा देवतादैत्य-मथनकरनेवालों-कोभी सुख नहीं मिला—

'अहीन्द्र साहस्रकठोरदृङ् मुखश्वासाग्निधूमाहत वर्चसोऽसुराः'
देवांश्चतच्छ्वासशिखाहतप्रभान्।' (भाग० ८।७।१४)

मंदराचल बेचारेको रज्जुघर्षणकी रगणतो थीही ऊपर से भगवानभी उसपर भारी बोझ दियेथे-यथा भागवत ८।७।१२-

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्यः आक्रम्य हस्तेनसहस्रबाहुः।'

इसीसे इससमुद्रकी लक्ष्मीसे श्रीसीताजीकी तुलनानहीं

होसकती, शंका उठायी जा सकती है कि - अपने रूपकानुकूल लक्ष्मीके सम कहनेमें क्यों संकोच होने लगा ?

समाधान—उत्पत्तिमें 'निमित्तोपादान सहकारी' तीन कारणहोतेहैं, और उत्तमतातो कारणकी योग्यतापर है। यहाँ उपादान छविसमुद्र' सहकारी परमरूपमयकच्छप, शोभा एवं शृङ्गारादि सबतो अच्छेहैं परन्तु निमित्तही अच्छानहीं,क्योंकि

चारिपदारथमें गिने नर्कद्वारहू काम। (दोहावली ३५६)

मंथनकरनेवाला निमित्तकारणकाम-नर्कद्वार है। यदि यही निमित्त न होकर सहकारियोंमें होता तबकोईहानि न होती और तब निःसंकोचरूपसे उपमादीजासकती जैसे कि—गीतावली १। १०६ में स्वयं गोस्वामीजीनेही उपमादियाहै—

सुखमासुरभि शृङ्गार क्षीरदुहि मयन अमियमय कियोहैदहीरी।
मथि माखन सिय राम सँवारे सकल लोकछबिमनहु महीरी॥

'यहि विधि उपजइ लच्छि जब।' केवल लक्ष्मीजीको उपमा केलिये इससे निश्चयकियाकि, सरस्वती, भवानी और रतिके तनमें, मुखरता, अर्द्धांगता और विधवपनका दुखरूपीदोषहै, परन्तु लक्ष्मीके तनमें दोषनहीहै इसीसे कबिने अपने रूपकसे लक्ष्मीके उत्पत्तिके कारणमेंदोष दिखाया दोष किंवागुण चार स्थानसे देखाजाताहै। जन्मकारण, संग कर्म, स्वभाव और निवास-गृह-स्थानसे—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन ताप ताड़नैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते जातेन संगेन गृहेण कर्मणा॥

(सुभाषित रत्नाकर। चाणक्य नीति कल्पतरु)

लक्ष्मीके स्वभावमें जो चांचल्यदोषहै उसे गोस्वामीजी

नहीं लिखे क्योंकि लक्ष्मीजी अपना चांचल्य त्याग करके निरंतर भगवच्चरणार्चनकररहीहैं—

यद्यपि परमचपल श्री संतत थिर न रहति कबहूँ।
हरिपदपंकजपाइ अचलभई कर्म वचन मनहूँ॥ वि.प. ८६

लक्ष्मीजी सुन्दरता और सुखकी मूलहैं समस्तसौंदर्य और सुख श्रीलक्ष्मीजीकी कृपाकटाक्षसे प्राप्तहोताहै क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जीवकी पुरुषकार भूताहैं। अन्यटीकाकारोंके भावतत्त्टीकाओंमें देखे जासकतेहैं। (न सम मखि ५। ३,)

* शंका ५२ *

रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥
जबकि—मोह न नारि नारि के रूपा।
तब—मोहे नर नारी कैसे ? (लक्ष्मीधर पाठक)

* समाधान *

प्रवीनौ स्वाधीनौ नवनिधिनवीनौ निरूपमौ।
मिथो रूपासक्तौ सततमनुरक्तौ शुभजनैः॥
बिचित्रौ सद्वेशौ परिहृत निमेषौ सुनयनौ,
तदासीतारामौ ममहृदि सबामौ बिहरताम्॥

मोहना कईप्रकारका होताहै। १-किसीभी सुन्दरबस्तुको देखकर हृदयमें अकस्मात् एकप्रकारके आनन्दोल्लास उदयहो जानेका नामभी मोहनाहै। २-बुद्धिमें भ्रम आजानेका नामभी मोहनाहै। ३-किसीभी स्त्री या पुरुषके सौंदर्यको देखकर कामविकारजन्य दूषितहो जानेका नामभी मोहनाहै। इसीतरह इसके औरभी कईभेदहैं। पहलेलक्षण के अनुसार—'देखिरूप मोहे नरनारी' है, दूसरेके अनुसार-सतीमोह, गरुड़मोह,

भुशुण्डिमोह आदिहैं। तीसरेलक्षणके अनुसार—"मोह न नारि नारिकेरूपा'। 'सीय चकितचित रामहिंचाहा। भये मोह बस सब नरनाहा।" "तब सियदेखि भूपअभिलाखे, क्रूरकुपूत मूढ़ मनमाखे"। "मुनिहिमोह मनहाथ पराये।" मुनि अति-बिकल मोह मतिनाठी।" आदि हैं। जो लोग कि "देखि रूप मोहे नर नारी" से उस सभामें उपस्थित नर पुरुषमात्रका कामातुर होजाना मानतेहैं। वे भलेलोग यहनहीं बिचारते कि उससभामेंतो उससमय सीताजीके पिता, पितृव्य चाचा भाई गुरु एवं अन्यसम्बन्धीगण तथा बड़े बड़े ऊर्ध्वरेता जीवन्मुक्त महर्षिगण और 'जगदम्बा जानहुजिय सीता" बिचार वाले साधुराजागण तथा लक्ष्मणऐसे जितेन्द्रिय नवयुवकभी बैठेथे। यदि सभी सीताजीको देखकर कामातुरहोगए, जैसेकि 'मोह न न नारि नारिकेरूपा।" प्रमाण देनेवाले धर्ममूर्तिलोग मानतेहैं तोक्या उससभाके सभ्य, जनक, लक्ष्मण साधुराजागण, ब्रह्म-रूप महर्षिगण आदिभी आजके भ्रष्टकलियुगसेभी गएबीते थे। आज इसगयेबीतेयुगमेंभी अधिकतर लोगोंका माता बहिन बेटी जगदम्बा आदिका स्वतः ध्यान आजानेसे इनपर कोईभी धार्मिकपुरुष सम्भावनासे भूलकरभी कभीभी मोहित नहीं होता। अतः उससमय सीताजीको देखकर जो काममोहित हुए थे उन आगन्तुक असाधुराजाओंके लिए आगे कहागया है कि 'भये मोह बस नर नाहा।'

तब सियदेखि भूप अभिलाखे। क्रूर कुपूत मूढ़ मन माखे॥

जो ऐसा अर्थ करतेहैं कि रंग भूमि में जब सिया और पगधारी अर्थात् अपने वक्षः स्थल परभृगुपग लांछन धरने

वाले रामको उपस्थित नर नारियोंने देखा तो सभी मोहित होगये कि—

'कैसी जोड़ी बनी मन भावनियाँ।" वह वाग्विलासमात्र है। क्योंकि वह अर्थ शब्दशास्त्रकी कसौटीसे दूषित है। साहित्यिक दृष्टिसे तो तद्गुणालंकारका प्रत्यक्ष उदाहरण रंगभूमिको देख कर उपस्थित सभीनरनारी मोहित-चकित होगये। तद्गुणालंकार की परिभाषाहै—

तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः।

(साहित्यदर्पणपरिच्छेद १० कारिका ११७)

स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्।

वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः॥

(काव्यप्रकाशदशम उल्लासः १३७)

तद्गुण निज गुण छाँड़िकै संगति को गुण लेइ॥ अज्ञात

श्रीसीताजीके पग जिस रंगके हैं उसरंगको, पदतलकी रेखा को रंगभूमिनेधारण करलिया अर्थात् मणिमय भूमिमें वेपद सरेख प्रतिबिंबितहोगये। गीतावली १।७—

प्रतिबिम्ब झलक छबिछलकहिं भरि अँगनैया॥

यह भाव भी कल्पना प्रसूत हीहै।—मानसमणि ३।१२

* शंका ५३ *

सीय स्वयंबर भूप अनेका। सिमिटे सकल एकते एका॥

द्वीप द्वीप के भूपति नाना। सुनि आये हम जो प्रन ठाना॥

देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा॥

जब दीपदीपके राजा, सूरवीर, सुभट, देवता दनुज सब आये तो अयोध्यासे दशरथजीका कोईभी शूरवीरसामन्त

नहींआया, क्या जनकजीने दशरथजीको निमंत्रणनहीं दियाथा या कोई दूसराकारणहै ?

—श्रीकृष्ण कुमार व्यास दहीहट्टा कलकत्ता

* समाधान *

सदाप्रेमाधीरं रघुकुलमणिवीरं गुणनिधिं।
महाभावाधीनं हरिहरहृदिलीनं धनुधरम्॥
महाराजं राजं दशरथकुलभ्राजं प्रियकरं।
नमो प्राणधारं विरहितविकारं रघुवरम्॥

स्वयंवरके दोभेद मानेजातेथे, एकतो वह जिसमें स्वयंबरा जिसेचाहे उसेजयमाला पहिनाकर पतिस्वीकार करले और दूसरा स्वयंवर वीर्यशुल्क होताथा अर्थात् किसी पराक्रम प्रदर्शनात्मक प्रणके पूराकरनेपर उसे-प्रणपूरकको वह स्वयंबरा सुन्दरी प्राप्तहोतीथी। उस स्वयंबरमें स्वयंबरा बालाकी रुचिका कोई मूल्य नहींहोताथा। प्राचीनकालमें दोनोंस्वयंबर प्रचलित थे। लक्ष्मी,दमयन्ती इन्दुमती, विश्वमोहिनी और अम्बालिका आदिका स्वयंबर पहलीश्रेणीमें था और मदालसा, सीता, सत्या नाग्नजिती लक्ष्मणा और द्रौपदी आदिका स्वयंबर दूसरी श्रेणीका था। इस दूसरीश्रेणीके स्वयंवरका कारण मैंने बर कीखोज शीर्षकलेख एवं मानसरत्न मंजूसा नामक पुस्तकमें विस्तार एवं प्रमाण पूर्वक संग्रह किया है।

प्रथम श्रेणीके स्वयंबरमें राजओं राजकुमारों एवं अन्य विशिष्ट-विशिष्ट क्षत्रीवीरों सामन्तोंको निमंत्रण जाताथा। परन्तु दूसरीश्रेणीके स्वयंबरमें किसीकोभी वैयक्तिक निमंत्रण नहीं जाताथा अपितु सर्वत्र घोषणा करादी जातीथी। घोषणा सुन-

कर जिसे जानाहोताथा जातेथे। उसमें प्रण पूर्तिका अधिकार क्षत्रियोंकीतरह ब्राह्मणोंकोभी था। द्रौपदीस्वयंबरसे स्पष्ट होजाताहै कि ब्राह्मण, क्षत्रियातिरिक्त अन्यवर्णोंको प्रण पूर्ण-करनेका कोई अधिकार नहींथा। इसीसे द्रौपदीने कर्णको मत्स्यभेदन करनेसे रोकदिया और छद्मब्राह्मण वेषमें रहतेहुये भी विवादकरके अर्जुनको मत्स्यवेधका अधिकार दियागया।

श्रीजानकीजीका स्वयंबर दूसरीश्रेणीकाथा अर्थात्—

वीर्यशुल्केति (वा० रा० १। ६६। १५, १७)

धनुतोरै सोईबरैजानकी राउहोइ कीराँक गीतावली १।८६)

सोई पुरारि को दण्ड कठोरा, राज समाज आज जेहि तोरा।
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरै हठि तेही॥

श्रीजनकजीने तो साफ-साफ़ कहाथाकि—

दीप दीप के भूपति नाना। सुनि आये हम जो प्रन ठाना।

अतः सिद्धहो गया कि जनकजीने किसीभी राजाके पास व्यक्तिगत निमंत्रण नहींही भेजाथा। घोषणामात्रथी। वहाँ श्रीदशरथजीको नहींजानाथा नहींगये। प्रणकी घोषणा सुनकर जिसेजानाथा वे गयेथे। आपकी शंकाका समाधान इतनेहीसे हो जाताहै परन्तु इसके आगेभी जोलोग कुचोद्यकरतेहैं उनके लियेभी कुछ कहदेना उचित मालूमपड़ताहै। शंका उठाईजा सकतीहै कि आखिर दशरथजी क्यों नहींगये। तो दशरथजी के श्रीसीताजीके स्वयंबरमें न जानेके दो कारणथे। एकतो दशरथजी श्रीरामजीके बियोगमें व्याकुलथे, मृतकवत दुस्सह दुःखका अनुभवकर रहेथे जिसका स्पष्टीकरण जनकपुरमें दश-रथजीके बरातलेकर जानेपर श्रीरामदशरथ मिलनमें किया

गया है कि—

सुत हिय लाइ दुसह दुख मेंटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

दूसराकारण यहहैकि दशरथजी और जनकजी मित्रथे—

बयस्यं राजसिंहस्य मिथिलाधिपतिर्महान्॥

मित्रकी कन्या और अपनीकन्या बराबर होतीहै। मैत्रीके ही नाते अङ्गाधिप रोमपादकी कन्या शान्ताको कुछ शास्त्रान-भिज्ञलोग अपने अज्ञानकेकारण आज शान्ताको दशरथजीकी अंगजाकन्या मानने लगेहैं, जबकि दशरथजीनेही स्वयं रोम-पादसे कहाथा कि—

शांता तव सुता राजन् सहभर्त्रा विशाम्पते।

मदीयं नगरं यातु:...... । वा० रा० १।११।१६

और दशरथजीको मरतेसमयतक अपनेबलका पूर्ण बिश्वासथा कि मैं अपने बलसे अघटित घटनाघटित और सुघट-विघटन में पटुहूँ इसमें किंचित्मात्रभी सन्देह नहीं है।

कहु केहि रंकहिं करौं नरेसू। कहु केहि नृपहिं निकारौं देसू॥

'सकउँ तोर अरि अमरउ मारी।' और यह बिश्वास-घमंड नहींथा प्रत्युत सर्वथा सत्यथा। एकबार देवदैत्य युद्धमें देव-ताओंकी सहायता करने जाकर दैत्योंकी सहायतामें आयेहुये दैत्योंके इष्ट भूतनाथ भगवान शंकरके त्रिशूलको शरीरपर झेल चुकेथे और शनिश्चर विजयकेसमय देवराज इन्द्रके अमोघ-वज्रको अपनेशरीरपर व्यर्थकर चुकेथे जिसका संकेत मानस में इसतरहसेहै कि:—'शूल कुलिस असि अंगवनि हारे।' अतः दशरथजीको अपनेबलपर जो बिश्वासथा वह सर्वांशमें सत्य था और वह यहकि जनकपुरके स्वयंवरमें जानेपर वीरचुनौती

न सही जावेगी। अतः धनुष तोड़ही डालूंगा परन्तु उसका परिणाम मेरे-दशरथकेलिये पापमय होगा कि मित्रकी कन्या जो अपनीकन्याके तुल्य होतीहै, उससे व्याहकरना पड़ेगा इसी· से दशरथजी श्रीसीता स्वयंवरमें नहीं गयेथे। इसीतरहकी पापकल्पनासे डरकर लक्ष्मणजीभी धनुष नहीं उठाये जिसका स्पष्टीकरण गोस्वामीतुलसीदासजीने गीतावलीमें कियाहै कि–

मेरो अनुचित न कहत लरकाईवश,
प्रणपरिमिति औरे भांति सुनी गई है।
नतरु प्रभु प्रताप उतर चढ़ाइ चाप,
देतो पै दिखाइ बल फल पाप मई है॥

कुछ मूर्खलोग श्रवणबधको लेकर दशरथजी पर ब्रह्महत्या-का आरोप करतेहुये ब्रह्महत्या ही न बुलानेकाकारण बतलाते हैं। परन्तु ऐसा कहनेवाले स्वयं ब्रह्महत्याजन्य पातकके भागी होतेहैं क्योंकि किसीपर मिथ्याआरोप लगानेपर वह अपराध आरोपकपर पड़ताहै उसका परिणाम आरोपकको भोगना पड़ताहै। श्रवण ब्राह्मणनहींथे वे तो बर्णशंकरथे पूर्वकालमें दशरथके पिता अजके राजत्वकालमें यज्ञदत्त नामक एकवैश्य का एक सुन्दरीशूद्रासे अवैधसम्बन्ध होगया। जिसकी पत्नीथी उस शूद्रने महाराज अजके न्यायालयमें अभियोग उपस्थित किया। तो अपराध सिद्धहोनेपर दोनों यज्ञदत्त वैश्य और शूद्र पत्नी की आँखें निकलवा लीगईं वहीदोनों अन्धी-अन्धाथे जिससे श्रवणका जन्म हुआथा। स्वयं श्रवणनेही अपनेको अपनेमुखसे बर्णशंकर बतलायाथा। देखिये वा० रा० २।६३

ब्रह्महत्या कृतं पापं हृदयादपनीयताम्।

न द्विजातिरहं राजन् माऽभूत्ते मनसोव्यथा ॥५०॥
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥५१॥

अतः दशरथके ऊपर ब्रह्महत्याकी कल्पनाकरके किसीको स्वयं अपनेऊपर ब्रह्महत्याजन्य पापलेना उचितनहींहै दशरथके सीतास्वयंबरमें न जानेका उपर्युक्त कारणही समीचीन है।

अतः जिसनगरसे स्वयं राजा नहींजारहाहै वहाँसे किसी अन्यभी शूरवीर सामन्तका जाना तो राजाके अपमान तद्वत ही होता। इसीसे अयोध्याका कोईभी बीर सीतास्वयंबरमेंनहीं गया और यहभी तो कारणथा :—

प्रानहुते प्रिय लागहिं सब कहँ रामकृपालु।
सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोही॥

रामप्रेमके कारण सबकाहृदय रामवियोगानलमें दग्धहो रहाथा स्वयंबरमें जाना किसेसूझताथा तभी तो—

'रामहिंदेखि बरातजुड़ानी।' 'बोले गिराप्रमाण', प्रामाणिक-बचन बोलनेवाले परमसत्यवादी श्रीलक्ष्मणजीने तो भरीसभा में जनकपुरमें ही कहदियाथा कि–

रघुबंशिन महं जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥

'कही जनक जसि अनुचितबानी।' अर्थात् कोई सामान्य रघुवंशीभी धनुष तोड़ सकताहै परन्तु उपर्युक्त कारणही किसीके अयोध्यासे न जानेका हो सकताहै।

जोलोग श्रीराम चरितात्मक ग्रन्थोंका श्रवण मनन नहीं-किये वेही लोग 'कूकर लौं भूंकत फिरैं सुनी सुनाई बात।' के अनुसार श्रीदशरथजीको ब्रह्महत्याका मिथ्यादोषी बताकर स्वयं ब्रह्महत्याकापाप अपनेऊपर लियाकरतेहैं शास्त्रका मतहै

किसीपर मिथ्याशाप लगानेसे उलटा लगानेवालाही उसपाप का भागीहोता है। (मानसमणि १६।३)

*** शंका ५४ ***

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥

इसका भाव क्या है? (रामजीदास मिश्र)

*** समाधान ***

शरच्छशांकद्युतिसंग्रहारिणी ह्युमारमार्यर्पितकंजधारिणी।
नृपावलीदर्पमदप्रहारिणी पुनातु मां रामजनार्धितारिणी॥

श्रीगोस्वामीजीकी अनेक रीतियोंमें उनकी एक यहभी अपनीशैलीहै कि जहाँ दो पक्षकेलोग प्रायः एकही शैलीके होते हैं वहाँ केवल एक पक्षकीही संख्याका निर्देशकरतेहैं। लंकाके युद्धमें सेनानीराक्षसों और सेनानीबानरोंकी संख्या प्रायः एक बराबरथी तभी तो-

भिरे सकल जोरी सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहि थोरी॥

बिचारनेकी बातहै कि यदि दोनों दलके सेनापतियोंकी संख्या बराबर न होतीतो जोड़ी कैसे लगजाती. और साधारण सैनिक बानरोंकीसंख्या जैसे असंख्यथी वैसे राक्षसोंकी भी-

'बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा॥'
चली तमीचर सेन अपारा। प्रबल अमित को बरणइ पारा॥

दोनों दलकी जोरी प्रथम दिनकेही युद्धमें मिलीथी फिर दूसरेदिनसे नहीं। क्योंकि दोनोंपक्षके बहुतसे बीरोंके हताहतहोने से सख्यामें गड़बड़ी पड़गई जिससे दूसरेदिन अपनी अपनी जोरी खोजनीपड़ी-

दुहुँ दिसि जय-जयकार करि निज-निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहित उत रावनहिं बखानि॥

इसी तरह जनकपुरमें आगन्तुक राजाओंकी तीन श्रेणी थी, एकतो खलराजाकी श्रेणी जो धनुषतोड़कर श्रीसीताजीके साथ बिबाह करनेकी इच्छुकथी। दूसरी श्रीसीताजीको जगदम्बा माननेवाली और तीसरीथी श्रीजानकीजीको पुत्री माननेवालोंकी श्रेणी। उन तीनोंमें खल राजाओंकी संख्या दशहजार थी। साधुराजातो कोईभी धनुषकेपासतक नहींगये—

जिनके कुछ बिचार मनमाहीं। चापसमीप महीप न जाहीं॥

दुष्ट राजालोग पहिलेतो अलग-अलग उठाना चाहे, जब किंचित्भी हिलाडुला न सके तब सम्पूर्ण दुष्टराजाओंने मिलकर जोर आजमाई किया और वे सब संख्यामें दससहस्रथे वेसब—जस थोरे धन खल इतराई। छोटे-छोटे भूमिधर राजालोग प्रायः बड़ेअभिमानी प्रकृतिके होतेथे। पहिले दस-दस बीस-बीस गाँवके अधिकारीभी राजाकहलातेथे आजसे कुछबर्षपूर्व भी कहलातेथे। युधिष्ठिरनेतो पाँचही गाँवका राज्य माँगाथा। ऐसेही छोटे-छोटे राजा दससहस्रकी संख्यामें जोरआजमाई करनेवालेथे। वेसब परिणामपर इसलिये नहीं बिचार किये कि वेसब—जे अविवेक अन्ध अभिमानी। थे अविवेकान्धके बिचारशक्ति तो रहतीही नहीं। और जोलोगकहतेहैंकि धनुष टूटनेपर लड़कर फैसलाकरलेनेका बिचार राजाओंनेकियाहोगा वहगलतहै क्योंकि मिलकर तोड़नेकी प्रतिज्ञाहीनहींथी और जोलोग दशसे दशसिररावण और सहससे सहसबाहु बाणासुरका भाव निकालतेहैं वहभीगलतहै क्योंकि रावण और बाण तो बिना धनुषस्पर्शकियेही चुपचाप सभासे भागगयेथे।

सकइ उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करिफेरू॥

'रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे ।।'
'रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ।'

और 'एकहि बारा' से 'एकदिन' का अर्थभी ठीकनहींहै क्योंकि आजहीकादिनतो यज्ञान्तका अवशिष्टथा, आजहीतो सबक्रियाकलाप करनाथा, बन्दीजनोंनेतो स्पष्टही कहदियाथाकि-
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा । राजसमाज आजु जेहि तोरा ॥

और धनुर्विस्तार की तो शंकाही व्यर्थ है वह तो आजभी जनकपुरके धनुषाक्षेत्रमें जाकर देखाजासकताहै कि एकही टुकड़ाधनुष सैकड़ोंफीटका लम्बा है, और—

मनहु पाइ भट बाहु बल अधिक-अधिक गरुआइ।

इसपंक्तिपर तो लोग ध्यानही कमदेतेहैं। इसपंक्तिका अर्थहैं कि धनुषमें यहशक्तिथी कि भटोंका जितना हाथलगताथा धनुष उतनाही अधिक-लम्बा होता जाताथा और वेलोग जितनाही बललगातेथे उतनाही धनुष गरुआइ-वजनदार होताजाताथा। इसकीशक्ति जान और देखकरहीतो श्रीजानकीने धनुषसे कहाथा कि—
निज जड़ता लोगन पर डारी। होउ हरुअ रघुपतिहिं निहारी ॥

इसतरह विचारनेपर शंकाका अवकाशही नहींरहजाता।

मानसमणि १० । ७

* शंका ५५ *

जनकपुरमें जनकजीके—

द्वीप द्वीप के भूपतिनाना। सुनि आये हम जो प्रण ठाना ॥

से लेकर 'तौ प्रन करि होतेउँ न हँसाई ॥ तक बोलनेपर लक्ष्मण जी बहुत क्रोधिहोगये, और बिना श्रीरामजीकी आज्ञाकेही सक्रोधवचन बोलनेलगे ।

मर्यादावादी श्रीतुलसीदासजी जिन्होंने सर्वत्र और सर्वदा मर्यादाकी रक्षाकीहै और इसीप्रसंगमें श्रीलक्ष्मणजीके लिये लिखाहै 'कहि न सकत रघुबीर डर' इसप्रकारकी मर्यादा उलंघन उनकी रचनामें कैसेहोगया ? पं० सीतारामिश्र पटना।

* समाधान *

उद्यतप्रभाकरसहस्रकरप्रसूतां
कामेश्वरीं काननखेललोलाम्।
विद्याविनोदविविधार्थविवेकदां तां,
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम्॥

सामान्य तया श्रीलक्ष्मणजी जब प्रभुके सामने कभीकुछ अपनीओरसे कहते हैं तब प्रणाम करकेही कहते हैं—कहत सप्रेम नाइ महि माथा। और जब श्रीरामजीके किसीप्रश्नका उत्तर देतेहैं तो अनुराग पूर्वक—पूंछे बचन कहत अनुरागे। मानसमें कहींभी श्रीलक्ष्मणजीने अपनेकारण किसीसे कुछ कभी कहाही नहीं, परन्तु जहाँकहीं किंचिन्मात्रभी श्रीरामजीके अपमानकी झलकआती है वहाँ आप हाथपर हाथधरे चुपचाप बैठे नहींरहते और उससमयभी जबकुछ करना होताहै तो आज्ञा माँगतेहैं और आज्ञानमिलनेपर चुपचाप शान्तहोकर बैठजातेहैं। देखिये चित्रकूटमें जबसुनाकि श्रीभरतजी आरहेहैं वहभी अकेलेनहीं किन्तु—सेन सङ्ग चतुरङ्ग न थोरी। उसमें आपको श्रीभरतजीके द्वारा श्रीरामापमानकी गन्धआई अतः तुरतही कुछ बोलनेके लिये—उठि कर जोरि रजायसु माँगा। और जब नीतिरस कहते २ रणरस व्याप्तहोगया तब आकाश वाणी हुई। जनकपुरकीतरह चित्रकूटमेंभी जब बिना श्रीराम जीकी आज्ञालियेही—तुम सर्वज्ञ शिरोमणि स्वामी। आदि

कहनेलगे तो उस बिना आज्ञा बोलनेका कारण और तद्विषयिक मर्यादाभंग संबधी अपनीनिर्दोषिताभी बतलादिये कि इससमय-

बिनु पूँछे कछु कहौं गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥

और जनकपुरमेंभी जब कुछकरना चाहे तो आज्ञामाँगने लगे कि—नाथ जानि अस आयसु होऊ । परन्तु इसपर जब श्रीरामजीने आज्ञा न देकर—सैनहि रघुपति लखन निवारे । तब सैन-इशारा पातेही चुपचाप श्रीरामजीकेपास बैठगये अतएव 'सेवक समय न ढीठ ढिठाई ।' न्यायानुसार श्रीलक्ष्मण जीने किसीतरहसे भी मर्यादोल्लंघन नहींकिया। और श्रीगो-स्वामीजीने सभी कथायें कल्पित नहीं लिखा है अतएव मानसमें गोस्वामीजीने यह क्योंलिखा ! ऐसे क्योंलिखा ? आदि कह कर श्रीगोस्वामीजी को अमर्यादित करनेका प्रयास करना उचित नहीं होता। (मानसमणि ७ । ७)

* शंका ५६ *

भगवती सीताजी आद्याशक्ति होतेहुये दुखीहो जातीहैं कभी अकुला उठतीहैं।

'तब रामहिं बिलोकि बैदेही। समयहृदय········।'

'मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेश भवानी।।'

'अति परिताप सीयमन माहीं। लव निमेष युगसयसम जाहीं'

सीताजीका इसप्रकार मनहीमन दुखीहोना अकुलाउठना शक्ति अवतारकी प्रधानतामें एक न्यूनताकाभाव खींचकर उन्हें अवतारके गौणरूपकी ओर संकेतकर रहा है। 'अतिपरिताप' और 'लवनिमेष युगसयसम' आदि एक साधारण संसारी बालाकी रूपरेखा खींचदेतेहैं। उन्हें यह ज्ञातथाकि मैं आद्या-

शक्तिहूँ श्रीरामजी आदिपुरुषहैं मैं उन्हें ब्याहीही जाऊँगी, तब भी वे धनुषकी कठोरता आदिके विचारबिमर्शमें क्यों इतना अधिक तन्मयहो जातीहैं ? उनकायह तर्कबितर्क करना साधारण संसारीकन्याका दृश्य दिखारहाहै । लीला या चरित्र केवल शारीरिक क्रियाओंसे न प्रगटकरके मानसिक अन्योन्य संबंधदिखलायागयाहै, क्या कारणहै ? पं० रामरक्षित शुक्ल

*** समाधान ***

सिद्धयष्टरूपगुणयोगप्रभाप्रमोद-
निध्याद्यनेकफलमंत्रप्रदानदक्षाम् ।
सर्वेश्वरत्वशिवविष्णुविधित्वदात्रीं,
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम् ॥

श्रीसीताजी आद्याशक्तिथीं उन्हें अपने भविष्यका ज्ञानथा तोभी लोकव्यवहार न करनेसे लीलाकी माधुर्यता अभिव्यंजित न होती इसीलिये सामान्य बालावत् चेष्टाप्रदर्शित करतीथीं। परन्तु मानसिक उद्विग्नताके समाधानमें सममना चाहियेकि-
'मुखप्रसन्न नहि मानसखेदा ।'
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ।'(पंचतंत्र)
'सूरत जरासी देखी फौरन समझगये । कैसेहैं किस जमालके कैसे कमालके ॥ (शैरशाइरी) मुखका प्रसन्नहोना मानसिक प्रसन्नताका और उदासहोना मानसिक दुःखका द्योतकहै। जबकि धनुर्भंगकेपूर्व सारे परिजन तथा पुरजनमें कुंहराम मचाथा, उससमय श्रीसीताजी यदि प्रसन्न दीखपड़तीं तो नरनाट्यसे माधुर्यता सैकड़ोंयोजनदूर भागजाती और ऐश्वर्य प्रगटहोजाता । बिचारनेकी बातहै कि ऐसी एक राजकन्या

जिसकेलियेकि अभी-अभी थोड़ीदेर पहिले दुष्टराजाओंने बड़े दर्पके साथ कहाथा कि—

'एकबार कालहु किन होऊ। सियहित समरजितब हम सोऊ॥'

उसेभला झगड़ा शान्तहोनेके पहिले अकेले कहीं छोड़ाजा सकताहै। अतः सशस्त्र वीरबांदियाँ और बालसहेलियाँ अवश्य साथमेंथीं, यदिऐसा न होता, एकान्तहोतातो यह न कहाजाता कि— प्रगट न लाज निशा अवलोकी।'

'लोचनजल रह लोचन कोना॥' 'सकुचीं व्याकुलता बड़िजानी' आदि। क्योंकि सकुच और लाज एकान्तमें नहींहोती तथा आँसूभी एकान्तमेंनहीं रुकते। यह न भूलनाचाहिये कि श्री-जानकीजी अभी रंगभूमिमेंहीहैं। जबसे—'जानि सुअवसर सीय तब पठवा जनक बुलाइ॥' तबसे जानकीजीका रंगभूमि से जाना नहींकहागयाहै। रंगभूमिमें जैसे हरश्रेणीके लोगोंके लिये स्थान नियत थे वैसे स्वयंवराकन्या सीताजीकेलियेभी स्थान नियत रहा जब—

संगसखी सुन्दर चतुर सादर चलीं लिवाइ।

और रंगभूमि जब सिय पगुधारी। अर्थात् अपनेनियत स्थान पर आगईं, तो वहींसे उन्होंने सबकोदेखा और देखनेवालोंने उन्हें देखा। पुनः वहांसे टलनातक वर्णितनहींहै। हाँ धनुष-टूटनेपर शतानन्दकी आज्ञासे अपने नियतस्थानसे रामजीके पास-धनुषकेपास जानाहै—

शतानन्द तब आयसु दीन्हा। सीतागमन रामपहँ कीन्हा॥

और जयमाल पहिरानेकेबाद दुष्टराजाओंका कोलाहल सुनकर जब जानकीजीको भयातुर जानातो सखीलोग वहांसे लिवागईं

कोलाहल सुनि सीय सकानी । सखी लिवाइ गईं जहँ रानी ॥

अतः राजकुमारी श्रीसीताजीकेपास बहुतसी स्त्रियाँ-सयानी सखियाँ, दासियाँ एवं अंगरत्तिकायें थींही। जबगुरुआज्ञासे—
'सहजहिंचले सकलजग स्वामी। 'तब रामहिं बिलोकिबैदेही॥'

श्रीवैदेहीका श्रीरामजीकी ओर देखना सभी समीपवर्तियों ने देखा, और जब रामजीकीओर देखकर वैदेहीजी अत्यन्त करुणशब्दोंमें जेहितेहि बिनवनेलगीं।' तब सखियोंने समझा कि राजकुमारी 'सभयहृदय०' होगईहैं । जब सीताजीनेदेखा कि सखियोंने मेरा जिसतिसका बिनवना सुनलियातो चुपहो गईं परन्तु व्याकुलताका नाट्यप्रगट होनेसे सखियोंने समझा अब राजकुमारीजी 'जेहि तेहीं मनारहीहैं पुनः तुरन्तही अत्यंत व्याकुलताका नाट्यप्रगट करके—
होहु प्रसन्न महेश भवानी। 'गणनायक बरदायक देवा॥'

आदि कहनेलगीं तब सखियोंने समझाकि बहुत अकुला उठीहैं, और जब 'अहहतात दारुणहठठानी।' आदि कहनेलगी तब सखियोंने समझाकि अब इनकामन पिताकाप्रण स्मरण-करके अत्यन्त क्षुब्ध होगयाहै, और जब 'विधिकेहिभांति धरौं उर धीरा।' से लेकर 'होउहरुअरघुपतिहि निहारी।' तक कहा तब सखियोंने समझाकि—
अति परिताप सीयमनमाहीं। लवनिमेष युगसयसम जाहीं॥

इसीतरह जयमालकेबाद दुष्टराजाओंका कोलाहल सुनकर और परशुरामागमन परभी श्रीसीताजीको व्याकुलताका नाट्य है। निष्कर्ष यहकि श्रीसीताजीआद्याशक्तिहैं। परं ब्रह्म स्वरूपा होनेसे वे भीतरसे खेदित नहींहैं ! परन्तु नरनाट्यको सफल

बनानेवाले व्याकुलतापूर्ण मुखकी भावभंगी और करुणशब्दों को सुनकर सखियों-दासियों आदिने जैसा अनुमानकिया वैसा वक्ताओंने बताया–गोस्वामीजीने लिखा। सखियों और दासियों ने श्रीसीताजीके मुखकी भावभंगी देखकर और वैसे शब्दोंको सुनकर उनके मनकी दशाओंपर वैसा-वैसा अनुमान इसलिये करलियाकि श्रीसीताजीके मर्म-गूढ़रहस्योंको श्रीरामजीके अतिरिक्त और कोई जान ही नहीं सकता यथा—

'बिभवभेदकछु काहु न जाना। 'सियमहिमा रघुनायकजानी॥'
'लखा न मर्म रामबिनुकाहू। मायासब सिय मायामाहू॥'
'राम प्रिया जग जननि सिय०॥' अन्य स्थलोंपरभी ऐसेही समझना चाहिये और तत्तत्स्थानोंपर श्रीरामजीकेभी व्याकुल शब्दों एवं भावभंगिमा आदिको नरनाट्यका पूरक समझना चाहिये। (मानसमणि ४। १२)

* शंका ५७ *

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥ तेहि छन मध्य राम धनुतोरा। यानी श्रीरामजीने धनुष तोड़ा। और उधर परशुरामसंबादमें स्वयं रामजी कहतेहैं। छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। धनुष तोड़नेसे टूटा तथा गाढ़ेखींचा फिर श्रीरामजी कहते हैं छूनेसे टूटा कैसे संभव है। पं० उत्सवलाल

* समाधान *

सर्वेश्वरीं सकलतत्वमयीं मनोज्ञां,
विद्येश्वरीं विबुधवृन्दविमृग्यमानाम्।
मात्रात्मिकां निखिलमंत्रविभूतिदात्रीं,
नित्यं नतोस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम्॥

१—श्रीरामजी को शिवधनुषके उठाने चढ़ाने खैंचने और तोड़ने आदिमें किंचित् मात्रभी कष्टका अनुभव नहींहुआ, जैसाकि स्वयं श्रीरामजीने तथा देखनेवाले श्रीलक्ष्मणजी एवं मैथिलदूतोंनेकहा था—

'छुवतहिं टूट पिनाक पुराना।' छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू।'

तहां राम रघुवंस मनि सुनिय महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमिगज पंकज नाल॥

अतः धनुषोत्तोलन खण्डनादि में श्रीरामजीको किंचिन्मात्र भी गाढ़-कष्टका अनुभव हुआहो ऐसा किसीने नहींदेखा प्रत्युत सबने देखाकि- 'अतिलाघव उठाइ धनुलीन्हा।' और उठाते ही उसे चढ़ाकर कमान खींचे खड़ेहैं। २—श्रीरामजीको धनुष लेते, चढ़ाते, खैंचतेहुये सामान्यतः तो सबनेही लक्ष्यकिया परंतु गाढ़े अर्थात् अच्छीतरह किसीनेभी नही देखा कि श्रीरामजी धनुष कब तोड़े अर्थात् खैंचतेही टूटगया, तोड़नेमें जोरनहीं लगाना पड़ा। जैसाकिमैथिल दूतोंने कहाथा कि—

भंजेउ चाप प्रयास बिनु। और दुर्जनतोषन्याय से लेना, चढ़ाना (नमितकरना भुकाना), प्रत्यंचाखींचना और तोड़ना यह चारोक्रियायें धनुषके अतिरिक्त दूसरीओरभी विभिन्न स्थलों पर लगती हैं जिसेकि—

उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्द्धं मुखैर्नामितं
भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेहीमनसा समं च सहसाऽऽकृष्टं ततो भार्गव
प्रौढ़ाहंकृति दुर्मदेन सहितं तद्भग्नमैशं धनुः॥

हनुमन्नाटक १।२३ का अनुवाद करतेहुये स्वयं श्रीगोस्वा·

भीजोनेही गीतावली१ । ६० में दिया है—

चहत चपरि शिव चाप चढ़ावन दशरथ को युवराज ॥
गहि करतल मुनिपुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो ।
नृपगण मुखनि समेति नमितकरि सजिसुख सबहि दियो ॥
आकर्ष्यो सियमन समेत हरि हर्ष्यो जनक हियो ।
भंज्यो भृगुपति गर्वसहित तिहुँ लोक विमोह कियो ॥

अर्थात् धनुष को उठाते, झुकाते खींचते और तोड़ते सबने देखा परन्तु साथ साथ ही कौशिक की पुलकावली उठाते लेते, दुष्टराजाओंका शिर झुकाते चढ़ावत, सीताजीका मन आकर्षते गाढ़े खैंचते और भृगुपतिका गर्व तोड़ते काहू न लखा अपितु देख सब ठाढ़े । (मानसमणि १० । ४)

* शंका ५८ *

श्रीमानसरामायणमें लक्ष्मणपरशुरामसंबाद, श्रीराम विवाहसे पूर्व किसग्रन्थके आधारपर लिखागयाहै ?

(पं० राजेन्द्रमोहन कटरा)

* समाधान *

प्रभा पारावारौ परमसुकुमारौ रघुवरौ
सदा प्राणाधारौ स्वजनहितकारौ परिकरौ ।
निजानन्दातृप्तौ प्रणत-परमाह्लादनिलयौ
कदा पश्ये साक्षादवनिपसुतौ शक्तिसहितौ ॥

रा० च० मा० का परशुरामसंबाद तो पूर्णरूपसे हनुमन्ना-टकसेही लियागयाहै । (देखिये 'श्रीहनुमन्नाटक और तुलसी शीर्षक मेरा तुलनात्मक निबन्ध । जो प्रेमसंदेश वर्ष १६ में प्रकाशित है । हनुमन्नाटकमें भी धनुर्भंगके पश्चात तुरंतही श्री

परशुरामजीका जनकपुर पहुंचना एवं वैसे तड़पभड़पके साथ संवाद वर्णितहै जैसा कि मानसमेंहै अपितु गोस्वामीजीसे अधिक मर्यादाका संरक्षण अन्यकिसीभी ग्रन्थमें नहीं पाया जाता। और यहप्रसंगतो श्रीगोस्वामीजी द्वारा कल्पित न होने से एतद्विषयिक गोस्वामीपादपर सारे कुतर्कों एवं आक्षेपोंका कोई मूल्यहीनहीं, प्रत्युत आक्षेप प्रक्षेप्ता के हृदयकी कालिमा का ही दिग्दर्शन होताहै। (मानसमणि १८ । ५)

*** शंका ५६ ***

गाधिसूनु कह हृदयहँसि मुनिहिं हरि अरइसूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥

दोहे के उत्तरार्धका क्या भावहै ? पं० रामकुमारत्रिपाठी

*** समाधान ***

मित्रानन्दप्रदाता त्रिभुवनविजयी रावणोर्दर्पहर्ता,
कर्ता सर्वेशात्मा प्रियतमहृदयाह्लाददो सज्जनानाम्।
सीताकान्तेर्नितान्तं सुचरितरसिको दिव्यलावण्यसिंधुः
ध्याये नित्यं महेशाद्यखिलसुरनुतं लक्ष्मणं चोर्मिलेशम्॥

त्योहार दोतरहके होतेहैं एकसार्वजनीन और दूसरा नियताधिकृत जैसे श्रीरामनौमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रिआदि सार्वजनीन, और नियताधिकृत जैसे स्त्रियोंकात्योहार तीज षष्ठी आदि पुरुषोंका ऋषिपंचमी आदि इसीतरह ब्राह्मणोंका श्रावणीउपाकर्म, क्षत्रियोंका विजयादशमीका अहेरिया एवं शस्त्रास्त्रादिपूजन वैश्योंका धनतेरस लक्ष्मीपूजनादि और शूद्रों का होलिकादाहादि । सार्वजनीन त्योहारोंकीतो एकही विधि रहाकरतीहै परन्तु नियताधिकृत त्योहारोंकी विधि अधिकारी

भेदसे अलग-अलग होती है । विजया (आश्विनशुक्ला) दशमीका साधारण विधान यह है कि उस दिन जब क्षत्रियलोग अहेरियाको जानेलगैं तो शक्करके बनेहुये शस्त्रास्त्र ढाल तलवार खांड़ा बर्छी बाण आदि ब्राह्मणोंको जिमावैं । यदि कोई ब्राह्मण-बन्धु चमकतेहुये असली खांड़ेको शक्करसे बने खांड़ेके धोखेमें अपने मुखमें देनेलगे तो उसकी क्या दशा होगी ! परशुरामने जिन अनेकों राजाओंको माराहै उन्हींके सरीखे श्रीलक्ष्मणजी को भी समझकर उनसे भिड़रहेहैं, इसीपर तो महर्षि श्रीविश्वामित्रजी कहरहेहैं कि श्रीरामलक्ष्मणजी अय-लौहमय, खांड़ कृपाणहैं ऊखमय चीनीकेबनेहुये खाँड़-कृपाण नहींहैं । जैसे लौहनिर्मितखांड़ा शक्करनिर्मित खांड़ेकीतरह मुहमें लेतेही गल नहीं जाता अपितु गलाफाड़देताहै उसीतरह ये दशरथकुमार परमघोर-वीर एवं सर्वथा अजेयहैं, वैसे क्षत्रिय कुमारनहींहैं जिनकोकि अभीतक तुमजीत चुकेहो । गुरूजी के कहेहुये—

अयमय खांड़ न ऊखमय अजहुं न बूझ अबूझ ।

इस सूत्र की व्याख्या तुरन्तही श्रीलक्ष्मणजीने करदिया कि 'विप्र विचारि बचउँ नृपद्रोही, मिले न कबहुं सुभट रनगाढ़े ।

(मानसमणि ८ । ४)

* शंका ६० *

श्रीलक्ष्मणजीने परशुरामजीसे कहाकि—

मातहिं पितहिं उरिनभये नीके । गुरुरिन रहा सोचबड़ जीके ॥
सो जनु हमरेहि माथेकाढ़ा । दिन चलिगये ब्याज बहु बाढ़ा ॥

वह गुरु ऋण क्या और कबका तथा कैसा है ?

पं० रामकुमार त्रिपाठी पोस्ट मास्टर खैरागढ़

* समाधान *

श्रीमद्दाशरथेर्विदेहतनयाजाने रहस्तत्त्ववि—

च्छास्त्रार्थ-प्रतिपत्त दत्त दुरितध्वान्तपहन्ताऽसकृत्।

शत्रुघ्नामरहस्यभावकत्रपुश्शास्त्रार्थज्ञाताऽग्रणी,

रामार्थप्रतिसाधके मम नतिः दासाभिलाषोन्नतिः ॥

पौराणिक अनुश्रुतिहै कि श्रीपरशुरामजीने श्रीशिवजीको गुरूबनाकर उनसेही सम्पूर्ण धनुर्वेद शस्त्रास्त्रविद्या प्राप्त करने केबाद श्रीशिवजीसे गुरुदक्षिणा माँगनेकेलिये अनुरोधकिया। शिवजीने कहाकि तुमनेमेरी बड़ीसेवा करके सरहस्यधनुर्वेद प्राप्तकियाहै मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्नहूँ अतः तुम्हारी गुरुदक्षिणा माफ करताहूं! परन्तु जब परशुरामजीने बहुत दुराग्रह किया तो शिवजीनेकहा कि मैं नरमुण्डमाल पहिनेहुये हूं परन्तु इसमें सुमेरुनहींहै अतः सुमेरुकेलिये सहस्त्रशीर्षाशेषशायी श्रीमन्नारायणका सहस्त्रशिर काटलाओ जो मेरे मुण्डमालका सुमेरु बनसके। परशुरामजीने जब युद्धादि अनेकउपायोंके करनेपरभी श्रीमन्नारायणका शिरनहीं प्राप्तकरपाया तो वे चुपचाप बैठ नहींगये प्रत्युत घोरतप करके वरदान देनेकेलिये भगवानको बाध्यकिया परन्तु वरदान माँगतेसमय परमदुरत्यया वैष्णवीमायासे अभिभूतहोनेके कारण श्रीमन्नारायणके शिरके स्थानपर उनका शार्ङ्ग माँगलिया जिसके लिये— 'राम रमापति कर धनु लेहू।' कहाथा, और नारद पांचरात्रीयबृहद्ब्रह्मसंहिता के—

वैकुण्ठेशस्तुभरतःक्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः।

शत्रुघ्नस्तु स्वयं भूमा रामसेवार्थमागताः॥

इस कथनानुसार श्रीलक्ष्मणजी साक्षात् सहस्रशीर्षा श्रीमन्नारायणहीहैं इस सम्बन्धमें कुछ विशेष जाननाहोतो मानस-संघसे प्रकाशित 'मानस सिद्धान्त' नामक मेरीपुस्तक देखिये। सहस्रशीर्षा शेषशायी श्रीमन्नारायण होनेसे—

मातहिं पितहिं उरिनभये नीके। गुरुरिन रहा सोचबड़ जीके॥
सो जनु हमरे माथे काढ़ा। दिन चलिगये ब्याज बहु बाढ़ा॥

आदि शब्द श्रीलक्ष्मणजीने कहाथा। श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनोंभाई नारायणावतारहैं श्रीरामजी अवतारीहैं, यहाँ हमरे बहुवचनान्त शब्दकहनेसे चारों भाइयोंका ग्रहणहो सकताहै प्रत्यक्षमें धनुषतोड़नेवाले श्रीरामजीका ग्रहणतो हैही। पर ऋण चुकानेमें मैं अकेलेही समर्थ हूँ इसीसे 'मैं देव' एक बचन कहा। व्यंगहै कि माताको मारकर मातृ ऋण, पिताको मरवाकर पितृ ऋणसे छूटे गुरूको मारनेकी ताकत नहीं है तो अपने गुरूको किसी तरह यहाँ बुलालावो मैं उन्हें मार दूँ तुम उऋणहो जावो इसीको 'सुनि कटु बचन' कहा। अन्य कई भाव-टीकाओं में देखिये। (मानसमणि ८।४)

* शंका ६१ *

चिर जीवहु सुत चारि चक्रवर्ति दशरत्थ के।

'चक्रवर्ती सार्वभौमः' इस अमरकोशके अनुसार अशेषभूमि का एकच्छत्र सम्राटही चक्रवर्तीहो सकताहै। किन्तु उक्त लक्षण न होनेपरभी कौशलेश दशरथजीको महारानी जानकीजीने चक्रवर्ती कहाहै। यथा—

ससुर चक्कवै कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥

कौशलेश दशरथजीने कहीं अश्वमेधयज्ञ कियाहै ऐसा

प्रमाण नहीं मिलता। यद्यपि रघुवंश काव्यमें 'एक नराधिप' आदि विशेषण प्राप्त होतेहैं, तथापि—

ब्रह्म सृष्टि लगि जहँ तनु धारी। दसमुख बसवर्ती नरनारी॥

इत्यादि रावणके विपुलवैभवका सुविस्तार वर्णन आश्चर्य सागरमें निमग्न कर रहाहै। अतः वे चक्रवर्ती थे या नहीं' या कि चक्रवर्ती की कोई सीमितपरिभाषा है।

(पं० भागवतप्रसाद द्विवेदी चाँपा म० प्र०)

* समाधान *

आसमुद्रकरग्राही सप्तद्वीपेश्वरः प्रभुः।
रामस्य जनकः श्रीमान् स मे दशरथःगतिः॥

विश्वकोशमें चक्रवर्ति शब्दके कईअर्थ लिखेहैं जैसे—

चक्रे भूमण्डले वर्तितुं चक्रं, सैन्यं चक्रं, सर्वभूमौ वर्तयितुं वा शीलमस्य।

१–बहुत बिस्तृत राज्यके अधिपति। २–एक समुद्रसे लेकर दूसरे समुद्रतककी पृथ्वीका राजा। ३–जिन्हें अनेक राजा कर देतेहों। ४–आसमुद्र कर ग्राही।

उपर्युक्त चार लक्षणोंमेंसे किसीएक लक्षणसे युक्तको भी चक्रवर्ती कहाजाताहै। इसकेबाद चक्र चूड़ामणि' की गाथा भी उद्धृत किया है।

'भरतार्जुन मान्धातृ भगीरथ युधिष्ठिराः।
सगरो नहुषश्चैव सप्तैते चक्रवर्तिनः॥ (गाथा)

अर्थात भरत जो तीसरे जन्ममें जड़ भरत हुयेथे, अर्जुन हैहयाधिपति सहस्रबाहु, मान्धाता, सगर, भगीरथ ये तीनों श्रीरामजीके पूर्वजथे, नहुष इला पुरूरवाके पौत्र और युधिष्टिर

ये सत्ययुगमें भरतवंशी एक राजा थे। ये सात चक्रवर्ती राजा सम्भवतः दशरथजीके प्रपितामह दिलीपसे पूर्वमें हो चुके थे, क्योंकि कविकुलगुरु कालीदासजीने दिलीपको भी चक्रवर्ती लिखा है— एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं...... ....। रघुवंश) और आसमुद्र करग्राही तो सभी सूर्यवंशी कुश से पूर्व तक थे। यह बातभी कविकुलगुरुने ही रघुवंश महाकाव्य में कहा है—

'आसमुद्र क्षितीशानामानाक रथ वर्त्मनाम्।'

काव्यमीमांसा अध्याय १७ में चक्रवर्तियोंके सात चिह्न कहे गयेहैं—चक्रवर्ति चिह्नानि तु -

चक्रं, रथो, मणिर्भार्या निधि रश्वो, गजस्तथा।
प्रोक्तानि सप्तरत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम्॥

धर्मसंहितामें कहागया है कि जिसके पास चौदह महारत्न हैं वह चक्रवर्ती है। वे चौदहरत्न येहैं—

चक्रं, रथो, मणिः, खड्ग, श्चर्म, रत्नं च पंचमम्।
केतु, र्निधिश्च सप्तैव प्राणहीनानि चक्षते॥
भार्या, पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्चयः।
पत्त्यश्व कलभश्चेति प्राणिनः सप्तकीर्तिताः॥
चतुर्दशेति रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनः॥

कविराज राजशेखर ने लिखा है कि कन्याकुमारीसे सीधे उत्तर एक हजार योजन तेरह हजारमीलतक चक्रवर्ती क्षेत्रहै- दक्षिणात्समुद्रादुदीचीं दिशंप्रति, योजनसहस्रं चक्रवर्तिक्षेत्रम्॥

(काव्यमीमांसा अध्याय ३)

जो कुमारीद्वीप अर्थात् भारतवर्षका कन्याकुमारी अन्त-रीपसे लेकर विंदुसर=मानसरोवर भी पुराकालमें विन्दुसर

कहलाता था यथा—

रम्यं त्रिन्दुसरो नाम यत्र यातो भगीरथः॥ २४॥
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥ २६॥
(वायु पुराण पूर्वार्ध अ० ४७ श्लो० २४ और २६)

जो व्यक्ति मानसरोवर तक एक हजार योजन भू भागको विजय कर लेता है वह चक्रवर्ती कहा जाता है—

कुमारीपुरात्प्रभृति विन्दुसरोऽवधि योजनानां दशशती चक्रवर्ति क्षेत्रम्। तां विजयमानश्चक्रवर्ती भवति॥
(काव्य मीमांस अध्याय १७)

श्रीविष्णुगुप्त चाणक्यने भी अपने कौटिलीय अर्थशास्त्र में चक्रवर्ती क्षेत्रकी यही सीमा लिखी है—

देशः पृथिवी, तस्यां हिमवत् समुद्रान्तरितमुदीचीनं
योजन सहस्रपरिमाणमतिर्यक् चक्रवर्तीक्षेत्रम्॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥ ६॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥ ७॥
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरात्।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः॥ ८॥
(विष्णु पुराण अंश २, अध्याय ३ श्लो० ६–८)

और भारतके नवोभागों-इन्द्रद्वीपसे कुमारीद्वीपतक कथित देशको जो जीतलेताहै वह सम्राट् कहाजाताहै—

तत्रेदं भारतं वर्षमस्य च नवभेदाः।इन्द्रद्वीपः,
कसेरुमान्, ताम्रपर्णो, गभस्तिमान्, नागद्वीपः,

सौम्यो गन्धर्वो, वरुणः कुमारीद्वीपश्चायं नवमः ॥७८
तान् येतान् यो जयति स सम्राडित्युच्यते ॥ ७९
(वायु पुराणपूर्वार्ध अध्याय ४५)

(वायु पुराण का उपर्युक्त ७८ वां गद्य काव्यमीमांसाके १७ वें अध्यायमें ज्यों का त्यों है ।)

राजादशरथजी सम्राट् नहींथे, केवल चक्रवर्तीमात्रथे। और सम्राट् पनकी यहीबात वायु पुराण ४५। ८५ में आगेभी कहीगई है—

कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडितिकथ्यते ।

लंका चक्रवर्ती क्षेत्रके बाहर थी ।

हिन्दीशब्दसागरकोशमें तो 'किसी दलके नायक' को या 'समूहके नायकको भी चक्रवर्ती कहागयाहै । कोशों में वर्णित सभी लक्षण दशरथजीमें थे। वाल्मीकि रामायण के बालकांड के सर्ग १४ में श्रीदशरथजी का अश्वमेधयज्ञ करना बड़े विस्तार के साथ वर्णित है । पुराणों के अनुसार मान्धाता सगर, भगीरथ, दिलीप, रघु आदि सभी अवधनरेशोंसे रावण भिड़ चुकाथा और सबसे हारही खातारहा। मान्धाताने तो रावण को मारही डालना चाहाथा पर ब्रह्माने मान्धाताकी प्रार्थना करके रावणको बचालियाथा। श्रीरामावतारसे लगभग साठ हजारवर्ष पूर्व दशरथजीने अपनी किशोरावस्थामें रावणको परास्त करदियाथा। पर अब रामावतारकालमें वृद्ध होचुकेथे और रावण तपोबलसे सदैव नवयुवकोंसे भी बढ़कर बलरखता था। इसीसे वृद्धावस्थामें दशरथजी रावणसे डरतेथे, तोभी इनके पूर्वज महाराजअनरण्य से वृद्धावस्थामें छेड़खानी करने

का दुष्परिणाम समझकर रावण भी इनसे डरता था इसीसे इसबुढ़ाईमें भी कभी इनसे छेड़खानी नहींकरता था। दशरथ जीके ही डरसे राक्षसगण भी लुकछिपकरही मानवीय प्रजाओं को सताते थे—'कपट वेष विधि कोटिक फिरहीं' जिसतरहसे प्रायः सभीराज्योंमें आजभी एकाध उद्दण्ड राजद्रोही अपने साथ अनेकदुष्टोंका संगठन करके प्रजाओंको सतायाकरतेहैं परन्तु उसराजाके राजत्वमें किसीको ननु-नच करने की गुंजाइशनहींरहती। इसकीतुलना सर्वांशमेंतो नहीं किन्तु अधिकांशमें उद्दण्डरावण और चक्रवर्ती दशरथ से कीजासकती है। चूंकि दशरथजी भी वृद्धहोनेसे रावणसे डरनेके कारण उसकेविरुद्ध कुछ करनहीं सकतेथे इसीसे कहागया कि—

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि-तनुधारी। दशमुख बशवर्ती नरनारी॥

वैसेतो कोशोंमें वर्णित चक्रवर्तीत्वके सभीलक्षणोंसे युक्त दशरथजी चक्रवर्ती राजाथे। (मानसमणि ५। १२)

* शंका ६२ *

'चले जहाँ दशरथ जनवासे। मनहु सरोबर तके पियासे॥"

जातेतो प्यासेही सरोबरकेपासहैं पर यहाँतो उपमामें व्यतिक्रमहै क्यों ? पं० राधेश्याम शर्मा मानस कथाबाचक

(मानसमणि ६। ३)

* समाधान *

दृष्ट्वा भूपं व्रजन्तं निखिलभुविपतिं नेत्रजास्यच्छकूले,
त्यक्त्वा साकेतलोकं विधिहरिनमितं दिव्यदेहं वहन्तम्।
अंशान्स्वार्द्धं परार्कं प्रमुदमुदकरं सूनुरूपं गृहन्तं,
आयातो यो ह्ययोध्यां भुवि मुनिनमितां रामचन्द्रो गतिर्मे॥

यदि यहाँ दशरथको सरोबर और रामजीको "पितु दर्शन लालच मनमाहीं।" के आधारपर प्यासा कहा जाय तो किसी तरह रूपकतो बैठ जायेगा परन्तु आगेका—

हर्षि उठे सुख सिंधुमहँ चले थाहसी लेत।

बाधक बन जायेगा। अतः श्रीरामजी सरोवर किंवा आनंदसमुद्रहैं और ससमाज दशरथजी प्यासेहैं। उनसबकी प्रबल प्यास यहहै कि—

"कबहिं देखिये नयनभरि राम लखन दोउ बीर।"

साहित्यक दृष्टिसे तो यहप्रसंग 'अभूतोपमा, प्रतीप एवं अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा' आदि अलंकारोंका सुन्दर उदाहरण है, और कई महानुभावोंने वैसामानाभीहै। परन्तु सैद्धान्तिक रूपसे तो इस उत्प्रेक्षाका कारण आध्यात्मिकता लियेहुयेहै। वह इसतरह कि–ब्रह्मतो सर्व ब्यापक होनेसे कहीं आताजाता नहीं परन्तु भक्तानुग्रहार्थ भक्तेप्सित रूपधारण करताहै।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥रा०ता०उ०पूर्वा०७॥

लीलास्वरूपधारण करके जब गमनागमनका नाट्यकरता है तोभी उसका ब्रह्मत्व अक्षुण्ण बना रहताहीहै। परन्तु जीव तो स्वाभाविक गमनशील ही है—

'उत्क्रान्ति गत्यागतीनाम्।' (वेदान्तदर्शन २।३।२०)

येवै के चास्मल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।'
(कौषीतकी ब्रा० १।२)

'स यदाऽस्माच्छरीरादुत्क्रामति०।' (कौ० ब्रा० ३।३)

'तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति, चक्षुषो वा मूर्ध्नो

वाऽन्येभ्यो वा शरीर देशेभ्यः।' (बृह० उ० ४। ४। २)

'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मल्लोकाय कर्मणे।' (बृह० ४। ४।६)

श्रुतियोंमें सर्वत्र ब्रह्मको आनन्दस्वरूप कहागयाहै। अथर्ववेद

'आनन्दानुम्रो नन्दांश्च कस्माद्वहति पूरुषः ॥' १०।२।६

ब्रह्म ही परमानन्द और सामान्य आनन्दका प्रदाताहै।

'अकामो धीरो अमृतः स्वयं रसेन तृप्तो न कश्चनोनः ॥

अथर्व १०।८।४४

ब्रह्म अकामहै, धीरहै, अमृतहै, और सदा रस-आनन्दसे तृप्त है। उसमें कहीं कुछभी कमी नहींहै।

स शेवृधम्०' (ऋ० १।५४।१) वह ब्रह्म आनंदस्वरूपहै।

'राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।' (ऋ०१।६८।१)

समस्त भुवनोंकाराजा ब्रह्म (कम्) आनंदस्वरूप एवं सबतरह से आश्रयणीयहै। 'शुनम हुवेम०।' (ऋ० ३।३०।२२

आनन्दमय ब्रह्मका हम आवाहन करतेहैं।

'सखा सुशेव एधि नः।' (ऋ० ७।५५।१)

हेपरमात्मा! आपसबकेसखाहैं हमसबको परमानंद प्राप्तकराइये

'वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः।' (ऋ० ८।४४।२४)

हे परमात्मन्! आपसबके वासयिता, सबके स्वामी एवं (कम्) आन्दस्वरूप तथा प्रकाशनिधिहैं।

'आत्माऽऽनन्दमयः।' (तैत्ति० २।५) ब्रह्म आनन्दमयहै।

'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चन।' (तै०उ० २।६)

ब्रह्मके आनन्दको प्राप्तकरलेनेवाला सर्वथा निर्भय [मुक्त] हो जाताहै, उसे कहींभय नहीं।

'आनन्दं ब्रह्म०' (तै० उ० ३।६) ब्रह्म आनन्दस्वरूपहै।

इत्यादि वेदों एवं उपनिषदोंकी अनेकों श्रुतियोंमें ब्रह्मको बार बार आनन्दस्वरूप कहेजाने सेही व्यासजीने ब्रह्मसूत्रमें आनन्दमयाधिकरण बनातेहुये—

'आनन्दमयोऽभ्यासात्।' (वे० द० १।१।१३)

कहा है। मानसके जिज्ञासित प्रसंगका भाव यहहै कि लौकिकलीलामें भगवान्का इसप्रकार अभूतपूर्व रूपसे चलना हुआ कि—'मनहुं सरोवर तके पियासे।' परन्तु गमनशील जीवही अचल व्यापक ब्रह्मानन्दको प्राप्तकरने चला करताहै। तभीतो आगे स्पष्टकर दियागयाहै कि वह परब्रह्म-जो आनंद सिन्धुसुखराशी। है उसे देखतेही—

'जीवोदशरथो नृपः।' (वेदार्थप्रकाश रामायण)

'हर्षि उठे सुखसिंधुमहँ चले थाह सी लेत।' दार्शनिक दृष्टिसे यही समाधान ठीकहै। [मानसमणि ६।४]

* शंका ६३ *

शंकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अति प्रिय लागे॥

दूलहरूपमें श्रीरामजीको देखतेसमय देवतालोग जिसके जितने नेत्रथे वह उतने नेत्रोंसे श्रीरामजीको देखनेलगे शिवजी अपने पांचोंमुखोंकी तीसरीआँखभी खोलकर देखनेलगे। शंका होतीहैकि जब शिवजीके तीसरे नेत्रमें अग्निहै—

तब शिव तीसरनयन उघारा। चितवतकाम भयउ जरिछारा।

तो पांच-पांच तीसरी आँख खोले फिरभी अग्नि नहीं निकली क्यों? पं० मुन्नालाल व्यास

ल समाधान *

विधुकरबरहासं दिव्यभव्यप्रकाशं,

युवतिजनविलासं भक्तहृत्कंजवासम्।

दनुजवनहुताशं दाससंत्रासनाशं,

विदलितभवपाशं नौमि नीलप्रभासम् ॥

क्रोधका स्वरूप अग्नि–प्रचण्ड अग्निमय बतलायागयाहै—

सुनु गिरजा क्रोधानल जासू। जारै भुवन चारिदश आसू॥

रावण क्रोध अनल निज स्वांस समीर प्रचंड।

आगे जरत दीख रिसभारी। मनहु रोष तरवार उघारी॥

रिसि तनु जरै होय बलहानी। केहिके हृदय क्रोध नहिं दहा॥

आदि, शंकरजीने कामदेवको क्रोधसे देखाथा इसीसे तीसरीआँखसे अग्नि प्रगटहुई थी।

सौरभ पल्लव मदन विलोका। भयो कोप कंपेउ त्रैलोका॥

तबशिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरिछारा॥

क्रोधं प्रभो संहार संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति॥

तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥

(कु॰ सं॰) परंतु जनकपुरमें शंकरजीने श्रीरामरूपको क्रोधसे नहीं अपितु प्रेमसे देखाथा जो अनुरागे शब्दही बतारहाहै।

समुद्रमें बड़वानल तो हरदम रहताहीहै पर उसका असर समुद्रपर कभीनहीं पड़ताहै बड़वानलही क्या प्रलयानलसे भी समुद्रनहीं जलता। समुद्रतो महाप्रलयमें भी अक्षुण्ण बना-रहताहै। जबकि कवितावली रा॰ सु॰ कांड में है कि—

युग षट् भानु देखे प्रलय कृशानु देखे।

शेष मुख अनल बिलोके बार–बार है॥

श्रीरामभद्रजीके रूपको समुद्र बतलायागयाहै—

'छवि समुद्र हरि रूप विलोकी।' एकहीनहीं अपितु श्रीराम-रूपतो अनंतानंत समुद्रसे भी अगाध एवं गम्भीरहै।

'सिन्धु कोटिसत सम गम्भीरा।' तबभला शतकोटि सिन्धु सम गम्भीरमें यदि शिवजीके पांचनेत्रसे अग्नि निकलतीभी तो वह रामरूपका क्या करसकती और फिर अग्निकी रचना भी तो रामजीकोही कीहुईहै श्रीरामजीही अग्निके कारण हैं।

ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। (मानसमणि १६.२)

* शंका ६४ *

'असकहिरहीं चरण गहिरानी। प्रेमपंक जनु गिरा समानी॥
रामबिदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी॥

यह परस्परका प्रणाम विनिमय कैसा? सासुको दामादका चरण वन्दन करना चाहिये अथवा दामादको सासुका?

अवधबिहारी गुप्त 'अवधेश' कोटवाधाम बाराबंकी

* समाधान *

ज्ञानानन्दात्मिकां देवीं वात्सल्यरसपूरिताम्।
सुनेत्रां पितृतनयां वन्दे श्रीमिथिलेश्वरीम्॥

भगवान् श्रीरामजीकी लीला माधुर्यैश्वर्य मिश्रित हुआ करतीहै, यद्यपिकि श्रीरामजी सदैव माधुर्यभावसेही प्रियपरिजनों एवं भक्तोंमें रहा करतेथे परन्तु जोलोग किसीतरहभी आपका कुछ ऐश्वर्य जानजातेथे कि आप परब्रह्मपरमात्माहैं वे लोगभी प्रायः आपके माधुर्यमें ही सदैव भूले रहतेथे तोभी यदाकदा जब भगवदैश्वर्यका स्मरण आजाताथा तो वे माधुर्य लीलामें पदवीमें बड़े होतेहुयेभी भगवच्चरणोंका स्मरण प्रणाम आदि करलेतेथे तोभी श्रीरामजी उनसे माधुर्यमयही बर्ताव बर्ततेथे। देखिये महर्षि श्रीबशिष्ठजीने इशारेसे श्रीरामजीका ऐश्वर्य बतला दिया था कि—

'धरहु धीर होइहैं सुतचारी। त्रिभुवन विदित भक्त भयहारी।।'
'जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकरते त्रैलोक सुपासी।।'

इत्यादि इसीसे जब चक्रवर्तीजीको श्रीरामजीके ऐश्वर्यका स्मरणहोजाताथा तब कह उठतेथे कि—

'जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।।'
'अस कहि गे विश्राम गृह राम चरण चितलाइ।।'
सुनहु राम तुम कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं।।

आदि। श्रीजनकजी कोभी श्रीरामजीके ऐश्वर्यका ज्ञान था इसीसे वे भी—

'जोरि पंक रुह पानि सुहाये।' 'मन परिहरै चरन जनि भोरे'।।

बर माँगतेथे। इसीतरह श्रीसुनैनाजीभी धनुभँगके कुछपूर्व चतुरासखी द्वारा श्रीरामजीका ऐश्वर्य जान चुकीहैं—

'सखीबचन सुनि भइपरतीती।' महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्य द्वारा भविष्य रामचरित एवं रामैश्वर्यका जाननातो स्वयंही स्वीकार कियाहै कि—'यह सब याग्यवल्क्य कहि राखा।।'

इसीसे ऐश्वर्यका ध्यान आ जानेसे—'अस कहि रही चरन गहि रानी।' परन्तु श्रीरामजी परिजनोंके सामने सदैव अपने ऐश्वर्यको माधुर्यमेंही छिपाये रखतेथे इसीसे जनकजी को—

करिवरविनय ससुर सन्माने। और सुनैनाजी को भी— 'कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी।।' क्योंकि श्रीरामजीतो मर्यादा रत्तकहैं और मर्यादा यहीहै कि दामादही सासु ससुरको प्रणामकरता है। (मानसमणि ८।७)

❋ शंका ६५ ❋

राजादशरथजी बरात सजाकर श्रीरामका बिबाह करनेके

लिये जब अयोध्यासे जनकपुरको जानेलगे तब मंगलाचरणमें चारका स्मरण करके रथपर सवार हुयेथे। यथा-

तेहि रथ रुचिर बशिष्ठ कहँ हर्षि चढ़ाइ नरेस।
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिरि हर गुरु गौरि गनेस॥

और जब जनकपुरसे लौटनेलगे तब एकमात्र गणेशजी काही स्मरण-मंगलाचरण करके अयोध्याके लिये प्रस्थान किया। तब-'सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना।' इस बिषमता का क्या कारणहै? (पं० मन्नालाल त्रिपाठी व्यास रामायणी)

*** समाधान ***

शिवशरासनचण्डविहण्डनं, सनृपभार्गवमदखण्डनम्।
जनकजामुखपंकजमण्डनं, नमत रविनन्दननन्दनम्॥

पूर्वकालमें ब्रह्मचारी जब स्नातक होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करताथा, बिवाह करताथा तो उसका एकमात्र ध्येय पुत्रोत्पन्न करके पितृऋणसे उन्मुक्त होतेहुये बंशपरम्परा को अक्षुण्ण रखनाही होताथा। सदैवसे प्रत्येक गृहस्थको पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा स्वाभाविक रूपसे होतीहै, जबपुत्र प्राप्तहोजाता है तो पुत्रबधू प्राप्तिकी इच्छा होने लगतीहै और जब पुत्रबधू प्राप्तहो जातीहै तो पौत्रप्राप्तिकी इच्छा जोर पकड़लेतीहै। यह संसारका नैसर्गिक नियमसा बनगयाहै। सूर्यबंशीयनृपतिगणों का तो—'सन्तानार्थमेव दारपरिणयम्।' का नियमही था। कविकुल गुरुने तो इसे बहुत सुस्पष्ट रूपसे रघुबंश १।७ में बतलायाहै कि—'प्रजायै गृहमेधिनाम्।' महाराज दशरथजीने भी बिबाहकेबाद संतान होनेपर लगातार अनेक बिबाहकरके भी जब पुत्रलाभ न करसके और वृद्धावस्थाभी आगई साठ हजार वर्ष आयुके बीतगये—

षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ।
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि।।वा०रा० १।२०।१०

इतने समय-साठहजार बर्ष तक पुत्र न प्राप्तहोनेसे गुरुदेवजीकी आज्ञासे ऋष्यशृङ्गद्वारा पुत्रेष्टि यज्ञकरके चारपुत्र प्राप्तकिया—'चौथेपन पायउँ सुतचारी ।' पुत्र प्राप्त करते ही पुत्रबधू एवं पौत्र प्राप्तकरनेकी लालसाका होना सर्वथा स्वाभाविकहोथा। और इससमय अर्थात् जबकि अयोध्याजीसे बारात लेकर जनकपुरके लिये प्रस्थान कररहेहैं तब प्राणसे प्रियतमपुत्र रामलालजी ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीके साथ जनकपुरमेंही हैं। अतःशीघ्रातिशीघ्र जनकपुर पहुँचनाहै जिससे तीनकी प्राप्ति तो जातेहीहै, एककी प्राप्ति कुछ बर्ष बाद अर्थात् चारकी प्राप्ति हो। वे चार हैं–१ रामजी-पुत्र २-महर्षि विश्वामित्रजी गुरु, ३-पुत्रबधू-श्रीरामजीकी पत्नी सीताजी और भविष्यकी आशा में चौथा श्रीजीकापुत्र-पौत्रहोना, इन चारके प्राप्तिकी लालसा थी इसलिये चारका मङ्गलाचरण रूपेण स्मरणकिया। अर्थात् रामजीके गुरुकी प्राप्तिके लिये अपने गुरुका स्मरण किया, रामजीको प्राप्तकरनाहै इसलिये हरका स्मरणकिया। क्योंकि हर स्मरणका फल पुत्र किंवा श्रीराम प्राप्ति है—

'काहु न इन सम शिव अवराधे। काहु न इन समान फललाधे
'कौन जाने कौने जप कौन योग याग तप-
कान्ह सों सुवन तोकोंमहादेव दियो है। (श्रीकृष्णगीता०)

तत्पश्चात् पुत्रबधू रामजीकी पत्नीके प्राप्तिकेलिये भगवती गौरिका स्मरण किया और तबकुछ बर्ष बाद रामजीके पुत्रहो ऐसी लालसा हृदयमें अभीसे उद्भूत होरहीहै, इसलिये

अन्तमें गौरिपुत्र गणेशजीका स्मरण किया। नहींतो गणेशजी का स्मरणतो सर्वप्रथम करना चाहियेथा क्योंकि श्रीगणेशजी प्रथम स्मरणीय हैं—

नाम प्रभाव जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥

अस्तु। इसीप्रकार जब जनकपुरसे बारात लेकर लौटे तब तो महाराज श्रीदशरथजीको गुरु महर्षि विश्वामित्र पुत्र और पुत्रवधुओंकी प्राप्तितो होही गईहै, अबतो केवत्र पौत्रमात्र प्राप्त करना अवशिष्ट रह गयाहै। अतः

तापस तपफल पाइ जिमि सुखी सिराने नेम।

के अनुसार अब 'हर, गुरु और गौरि' के स्मरणका तो प्रयोजन समाप्तही होगया, केवल पौत्रप्राप्तिकी लालसाहै इसीसे लौटतीबार—'सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना।' केवल एक 'गजानन-गणेश' मात्रका स्मरण करकेही दशरथजीने सदल-बल अयोध्याजीके लिये प्रस्थान किया। (मानसमणि १०।६



मानस और मानसमणिके अतिरिक्त ग्रन्थानुक्रमणिका

❀ विषयसूची ❀

—::❀::—